

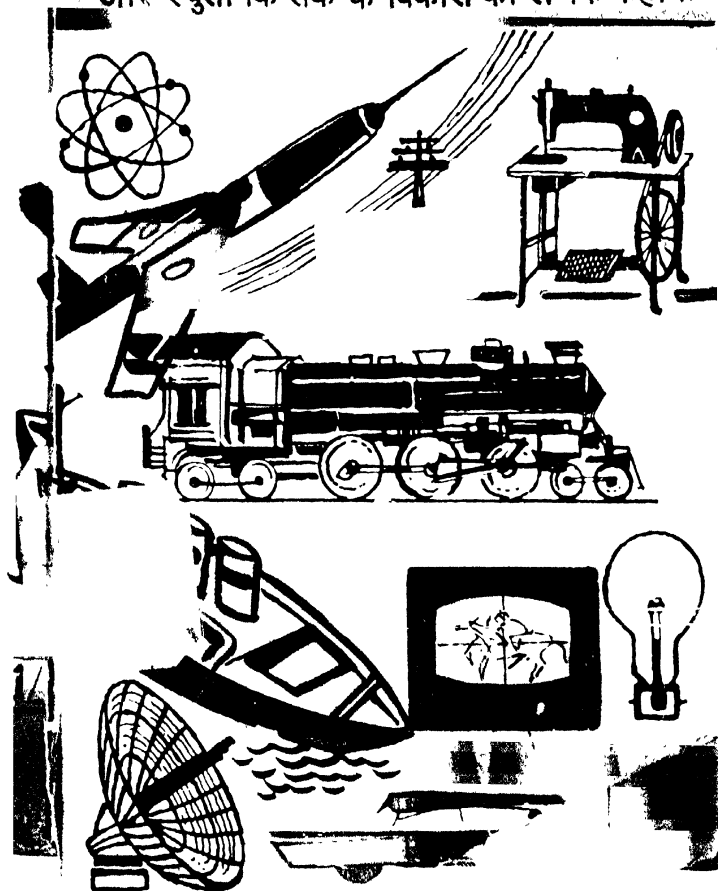
UNIVERSAL
LIBRARY

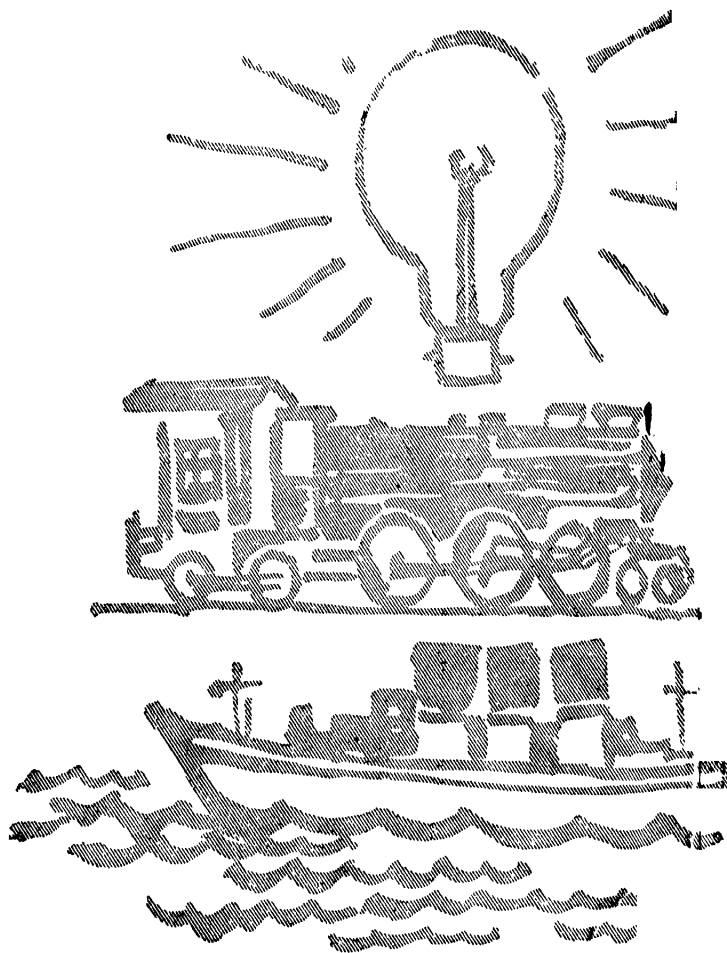
OU_186411

UNIVERSAL
LIBRARY

मशीनों की दुनिया

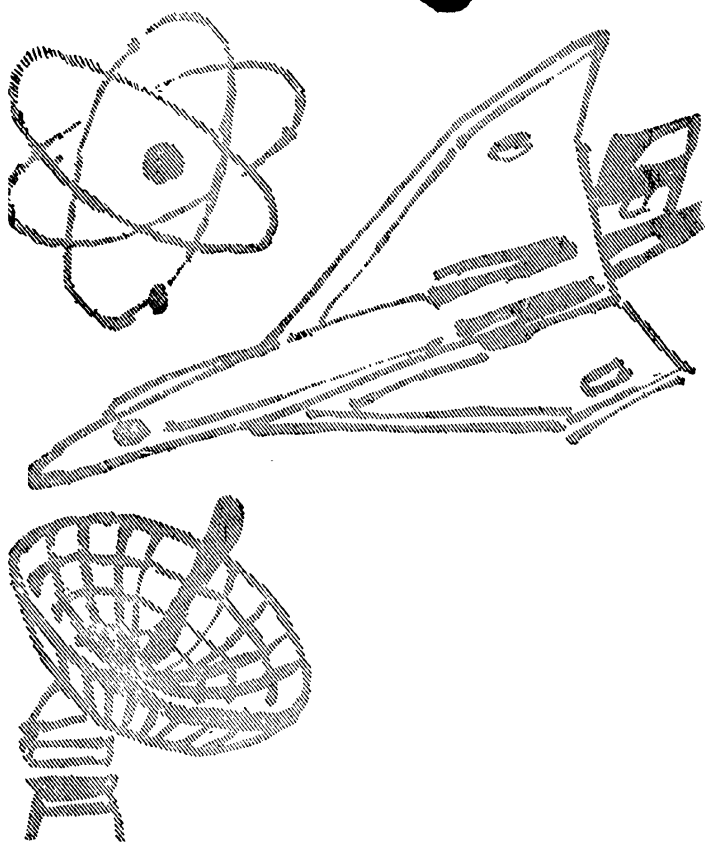
मामूली मशीनों से लेकर नए-नए पेचीदा यंत्रो
और स्पुतनिक तक के विकास की रोचक कहानी





हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

मशीनों की दुनिया



‘MECHANICAL MAN’ का हिन्दी अनुवाद

© 1959, BY BERIL BECKER

**अनुवादक
जगतराम साहनी**



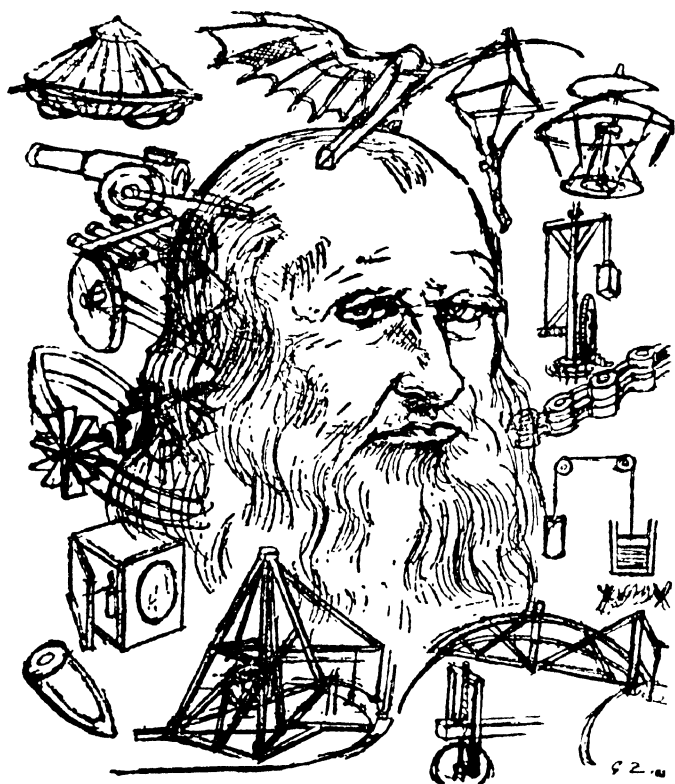
MASHINO KI DUNIYA : SCIENCE

BERIL BECKER

मूल्य : एक रुपया

क्रम

मशीन-युग के पिता	7
सार्वभौमिक शक्ति का स्रोत	17
स्वचालित उंगलियां	31
इंजन तथा पांव-चक्के	35
स्वचालित मिलें और फसल काटने की मशीनें	39
मशीन बनानेवाली मशीनें	43
यांत्रिक मानव पहियों पर	48
बिजली का प्रवाह	54
डाइनेमो	63
विद्युत्-शक्ति का युग	67
आविष्कारों की शृंखला	73
अन्तर्दहन इंजन	78
स्वचालित मानव	84
भविष्य की तरंगें	88
इलेक्ट्रॉनिक चक्षु	93
गणित-यंत्र	99
स्वचालित मशीनें	104
संगणकों की बाढ़	111
ज्ञान-यंत्र	118
नए युग के लिए नई शक्ति	121
पिण्ड का शक्ति में परिवर्तन	124
अंतरिक्ष में इंजन	130
अंतरिक्ष युग	138



मशीनों की दुनिया



1. मशीन-युग के पिता

मनुष्य के बनाए हुए उपग्रह बहुत दूर अंतरिक्ष में घूम रहे हैं। अनोखे सपने अब हकीकत बन चुके हैं। '80 दिन में दुनिया की सैर' अब जूले वर्न जैसे किसी लेखक की कल्पना तक ही सीमित नहीं रही, स्पुतनिक और वैनगार्ड तो यह सैर मिनटों में करा देते हैं।

विश्व के इतिहास के किसी काल में भी विज्ञान ने इतने कम समय में इतने ज्यादा आदमियों को इतना कुछ नहीं दिया। मनुष्य ने परमाणु को अपने काम के लिए जोत लिया है, बिजली को सधा रखा है, अधिकतर रोगों पर काबू पाया है, घंटों को मिनटों में बदल दिया है, फासलों को कम कर दिया है, अणु के कण से लेकर विराट आकाशगंगा तक की वस्तुओं की जांच-पड़ताल की है, और जीवन को और भी सुखकर बनाने के लिए कई प्रकार की मशीनें तैयार की हैं।

यद्यपि मनुष्य ने संसार के रूप को इतना बदल दिया है कि पहचाना नहीं जाता, परन्तु वह अपने को बदलने में सफल नहीं हुआ। वह एक नये रूप का यांत्रिक मानव बन गया है। फिर भी, वह साथ-साथ अपने-आपको एक ऐसी दुनिया में पाता है जिसपर परमाणु की धाक बैठी हुई है। अपनी सारी उन्नति के होते हुए भी, मनुष्य एक आवश्यक परिवर्तन, अर्थात् अपने हृदय में परिवर्तन लाने के योग्य नहीं हो पाया है।

भलाई और बुराई की इस प्राचीन समस्या ने लियोनार्दो दा विंची के अन्तःकरण को छू लिया था जो आज मशीन-युग के पिता माने जाते हैं ।

जैसाकि हम आगे चलकर देखेंगे, लियोनार्दो आज से पांच सौ वर्ष पहले इस बात के प्रति सचेत थे कि यह यांत्रिक मानव या तो हमारा मालिक बन सकता है, या हमारा नौकर और हम इसके मालिक । उन्होंने युद्ध की मशीनों के निर्माण को बन्द कराने के लिए मौत तक का खतरा मोल लिया ।

हम आज भी यह तय नहीं कर सके कि यांत्रिक मानव हमारा नौकर बनकर रहेगा या मालिक ।

आज जिस स्थिति का हम सामना कर रहे हैं उसे भली भांति समझने के लिए हमें बीते युग की एक काल्पनिक सैर की जरूरत है । राकेट में बैठकर बीते काल में उड़ान भरने से इस बात का पता चल जाएगा कि यांत्रिक मानव की अद्भुत शक्ति कैसे आरम्भ हुई ।

काल-मशीन

हम अपनी काल-मशीन के नियन्त्रकों को अच्छी तरह जमाकर बीते युग की ओर घूमना शुरू कर देते हैं । हमारे राकेट को पीछे की ओर चलते समय, आगे बढ़ते हुए काल की गति के विरुद्ध बहुत जोर लगाना पड़ रहा है । यह लो, एक पलक में हम बीस साल पीछे की दुनिया में पहुंच गए । वहां अंतरिक्ष में उड़ान भरने-वाले राकेट, स्वचालित यंत्र, जेट हवाई जहाज और परमाणु भट्ठी आदि अभी अस्तित्व में नहीं आए हैं । जब हम उस बीते युग में पहुंच जाते हैं, जबकि हमारा संसार अपनी बाल्यावस्था में से गुजर रहा होता है, तब क्या देखते हैं कि रेडियो और टेली-विजन एंटेना गायब हैं । सभी प्रकार के वायुयानों का बुर्ज आकाश में से लोप हो जाता है । पिछली सदी के अन्तिम भाग में, सीमेंट के राजमार्ग गर्द से अटी सड़कों में बदल जाते हैं । मोटरगाड़ियों का स्थान सुस्त-रफ्तार घोड़े और छकड़े ले लेते हैं ।

बिजली के लैम्प आहिस्ता-आहिस्ता बुझ जाते हैं। बिजली-घर और बिजली के तार नज़र से ओझल हो जाते हैं। ट्राली-कारें इस धरती से गायब हो जाती हैं। बिजली से चलनेवाले कारखानों का कहीं नाम-निशान नहीं मिलता। टेलिफोन का कहीं पता ही नहीं चलता। भाप से चलनेवाले समुद्री जहाज़ फिर बादबानी किश्तियों में बदल जाते हैं। रेल की पटरियां और तार के खम्भे सिकुड़कर मिट जाते हैं। भाप के इंजन की पहली गरम भभक जाने कहां उड़कर नष्ट हो जाती है।

ज्यों-ज्यों हम तेज़ी के साथ मंदगामी सत्तरहवीं शताब्दी में से गुज़रते हैं, दुनिया को पहचानना और भी कठिन होता जाता है। गूँजते और गरजते हुए औद्योगिक नगर या तो छोटे-छोटे कस्बों में बदल जाते हैं या फिर से वहां जंगलों की वीरानी छा जाती है। संसार की जानी-पहचानी बड़ी-बड़ी बन्दरगाहें, खामोश सोए पड़े सागर-पत्तनों का रूप ले लेती हैं जहां छोटे-छोटे जहाज़ चाय, कहवा और रुई का अपना दुर्लभ और कीमती माल उतार रहे होते हैं।

जब हम इससे भी पिछली सदी में से गुज़रने लगते हैं तो अजीब तरह के गांव, मध्यकाल के ऊंचे-ऊंचे महलों के पास बसे दिखाई देते हैं। किसान अपनी कुदालों पर भुके ज़मीन की काश्त करते होते हैं। देहातों की कच्ची सड़कों पर जहां-तहां अकेले-दुकेले सौदागर बोझ से लदे गधों के साथ-साथ मंथर गति से चले जा रहे होते हैं। चीन और जापान जैसे दूर बसे देश कैथ और सिपांगो जैसे दूसरे नामों से पुकारे जाते हैं।

लियोनार्दो दा विंची

हम बीते युग में अपनी यह संक्षिप्त-सी यात्रा सन् 1464 में इटली देश के फ्लोरेंस नगर में समाप्त कर रहे हैं। यहां मशीनी युग पहले-पहल लियोनार्दो दा विंची के मन में उपजता है।

हम सभी उन लियोनार्दो को जानते हैं जो अत्युत्कृष्ट कला-कृतियों के महान चित्रकार थे। लेकिन इन लियोनार्दो को कम ही दुनिया जानती है जिन्होंने वास्तव में आज के मशीन-युग के सम्बन्ध

में हमें पहले से ही बता दिया था। उनके विज्ञान-सम्बन्धी विचारों और आविष्कारों का विशाल भंडार उनके अभिलेखों और नक्शों से भरे 5000 पृष्ठों में मिलता है। उनके हाथ के लिखे नोट उलटे अक्षरों में लिखे हुए हैं ताकि लोग उनका पता न लगा सकें और लेखक को एक सनकी स्वप्नदर्शी कहकर उसका मजाक न उड़ाएं।

प्रश्न उठता है, अपने समय से 500 वर्ष आगे की विज्ञान की दुनिया की तलाश करना और उसे खोज निकालना अकेले एक आदमी के लिए कैसे सम्भव हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए लियोनार्दो का कला के एक युवक विद्यार्थी के रूप में अध्ययन करना होगा।

चौदह वर्ष की आयु में लियोनार्दो ने अपने गुरु वेरोशिग्रो के खूब नपे-तुले शब्दों को गांठ बांध लिया था। लियोनार्दो से उनके गुरु ने अनुरोध किया था कि वह पुरानी गलतियों को दुहराना बन्द कर दे और गणित-शास्त्र के कठोर सत्य के अध्ययन द्वारा शक्ति प्राप्त करे।

लियोनार्दो अपनी कला को परिपूर्ण बनाने की अनथक शक्ति के साथ गणित-शास्त्र के अध्ययन में डूब गए। दिन-रात एक करके उन्होंने प्राचीन यूनानी पुस्तकों के अनुवाद पढ़े और प्रकृति के गणितीय नियमों का पता लगाने के लिए सभी प्रकार की दुर्लभ सामग्री की खोज शुरू कर दी। उन्होंने पढ़ा:

“जब कोई वस्तु दुगुनी दूरी पर हटा दी जाती है तो वह किरमिच पर अपनी पहली जगह का केवल एक-चौथाई भाग घेरती है। समानान्तर रेखाएं यदि आंख की सतह से नीचे देखी जाएं तो ऊपर की ओर झुकी दीखती हैं, और यदि आंख की सतह से ऊपर देखी जाएं तो नीचे की ओर झुकी दिखाई देती हैं। परन्तु ये सभी रेखाएं किरमिच पर एक बिन्दु पर ही मिलनी जरूरी हैं...”

युवक लियोनार्दो का ज्ञान प्राप्त करने का उत्साह सपाट किरमिचों पर दूरी का पता लगाने के लिए पेचीदा और मनोहारी नये तरीकों का कारण बना। उन्होंने जाना कि हवा का भी अपना

वजन होता है और इसीलिए बहुत दूर की वस्तुओं की रोशनी मन्द पड़ जाती है। लियोनार्दो ने प्रकृति की विचित्र बातों का विश्लेषण करने के लिए अपनी आंखों और मन को सिधाया। यहां तक कि वे इटली की ऊंची पर्वतश्रेणियों पर भी चढ़े, ताकि प्रकाश और छाया पर दूरी और ऊंचाई के प्रभाव का अध्ययन कर सकें। विज्ञान के रहस्योद्घाटन ने उनकी कला को इतनी तेजी से उन्नत कर दिया कि उन्होंने अपने मन की सृजनात्मक प्रक्रिया के साथ स्वयं विज्ञान का अध्ययन बढ़ा दिया।

पहले आविष्कार

अपने एक चित्र पर काम करते समय उनकी आंखें स्टूडियो की खिड़कियों की राह अन्दर आ रहे सूर्य के प्रकाश की चमकीली किरणों से अचानक भटक गईं। ऐसा लगा जैसे शीशे ने प्रकाश को और भी तेज कर दिया हो। वे सोचने लगे, क्यों न शीशे का एक ऐसा ढकना बना लिया जाए जो अपने तेल के लैम्प की लौ को घेरे हुए हो और इसे इधर-उधर फैलाता जाए? शीशे की वस्तुएं बनाने की फुंकनी की सहायता से उन्होंने सावधानी से पहली लैम्प-चिमनी तैयार की। तुरन्त ही उनकी लैम्प-हांडी दूर-दूर तक लोकप्रिय हो गई, जिससे उन्हें दूसरी घरेलू वस्तुओं के आविष्कार के सम्बन्ध में सोचने की प्रेरणा मिली।

यदि वे प्रकाश और छाया के अध्ययन द्वारा काम की ऐसी वस्तुएं बनाने में सफल हो सके तो यंत्र-विज्ञान के नियमों के अध्ययन में वैसी ही विधि का अनुसरण क्यों न किया जाए? कुछ सरल सिद्धान्तों पर मनोयोग से चलते हुए लियोनार्दो ने कुछेक यान्त्रिक रूपों को आपस में जोड़ा और परिणाम यह निकला कि शीघ्र ही उनकी चित्रशाला, बन्द हो सकनेवाली मेजों, अपने-आप बन्द हो जानेवाले दरवाजों और गरम हवा के प्रवाह से उलट-पुलट की जा सकनेवाली कबाब भूँने की सीख से सुसज्जित हो गई।

तब उनके विचार साधारण पहिये या चक्र की सम्भावनाओं के अध्ययन की ओर भुड़ गए। उनकी दृष्टि में चक्र ने एकाएक

निरन्तर गतिमान लीवर या उत्तोलक का रूप धारण कर लिया, जिसके कारण उन्होंने बाद में पहिये के एक ऐसे ठेले का आविष्कार किया जो एक मनुष्य द्वारा चलाया जा सकता था ।

एक बड़ी घड़ी की मरम्मत करते समय उन्हें एक विचार सूझा कि वे एक गियर को उससे चौगुनी साइज के गियर में फंसा सकते हैं । इस तरह उन्होंने पहली ऐसी बड़ी घड़ी तैयार कर ली जो घंटों के साथ-साथ सेकण्डों में भी समय बताती थी ।

उन्होंने देखा कि प्रकृति में कोई बात अकारण नहीं होती । हर परिणाम के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है । उदाहरण के लिए यन्त्र-विज्ञान के नियम छः सादा मशीनों को प्रकट करते हैं—लीवर या उत्तोलक, चक्र और धुरी, गरारी, रंदा और पन्चड़ । इन छः मूल मशीनों के जोड़-तोड़ से जो उपयोगी काम लिए जा सकते थे वे लियोनार्दो के लिए इतने सरल और इतने यथार्थ थे कि उनके मस्तिष्क से आविष्कारों की एक निरन्तर धारा बह निकली । इन आविष्कारों को उन्होंने दिन-प्रतिदिन अपनी नोट-बुकों में दर्ज किया ।

गियरों में प्रयोग करते हुए उन्होंने घूमनेवाले पुल जैक और चढ़ने के जीने का आविष्कार किया । इसके अतिरिक्त वे पक्षियों की उड़ान के रहस्य में दिलचस्पी लेने लगे और विस्मित होकर सोचने लगे कि क्या पंखों और रडार 'सुकान' की मशीनी व्यवस्था कर देने से हवा में उड़ना मनुष्य के लिए कभी सम्भव हो सकेगा ? उन्होंने लिखा है :

“उड़ना सीखने के लिए पहले हवाओं का समझना आवश्यक है । और हवाओं की व्याख्या समुद्र की तरंग-गतियों का अध्ययन करने से होती है ।”

इन सभी प्रकार के अध्ययनों का परिणाम, पहली हवाई छतरी, हेलिकाप्टरों और उड़ान की मशीनों के पहले नमूनों के रूप में हमारे सामने आया । उन्होंने मनुष्य के लिए धातु के सिलेण्डर में हवा बन्द करके पानी के नीचे यात्रा तक को सम्भव बनाया । गोता लगाने की पहली पोशाक और पहली पनडुब्बी वास्तव में

लियोनार्दो ने ही तैयार की थी । परन्तु इतिहासकार हमें बताते हैं कि लियोनार्दो ने इन्हें शीघ्र ही नष्ट कर दिया था ।

उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति को विज्ञान और कला के दो विभिन्न स्तरों पर काम करने के योग्य बना लिया था । यहां तक कि अपनी कला के लिए शरीर-रचना विज्ञान का अध्ययन करते समय जब वे मनुष्य के शरीर की चीर-फाड़ करते थे तो वे साफ देख लेते थे कि मांस-पेशियां, पट्टे और नसें सभी मांस और रक्त के एक पेचीदा यन्त्र के ऐसे कल-पुर्जे हैं जो आश्चर्यजनक ढंग से आपस में जुड़े हुए हैं । मनुष्य के शरीर का एक-एक अंग हर दूसरे अंग के साथ गणितानुसार सम्बन्धित है, जो बोलों और लीवरों, वृत्तों और त्रिकोणों की एक यांत्रिक व्यवस्था से हूबहू मिलता है । इसी कारण उन्हें यह लिखना पड़ा कि मानव-शरीर की रचना केवल किसी अलौकिक कारीगर के हाथों ही हुई है ।

एक आविष्कर्ता के रूप में उनकी ख्याति वेनिस के शासकों के महलों तक फैल गई । तुर्की के जंगी बेड़े द्वारा हमले के डर के कारण वेनिसवासियों ने पनडुब्बी की तैयारी में लियोनार्दो को आर्थिक सहायता दी । बाद में पोप के बदनाम लड़के सेजारे बोर्गिया ने, जो सारे इटली देश को जीत लेने की महत्त्वाकांक्षा दिल में संजोए हुए था, बस्तरबन्द टैंकों और रॉकेट प्रक्षेपणास्त्रों के गुप्त डिजाइनों का रहस्य खोल देने के लिए लियोनार्दो को मजबूर करने का यत्न किया ।

इस दुःखद काल में लियोनार्दो युद्ध-सम्बन्धी अपने सभी आविष्कारों के बारे में निरन्तर बढ़ते हुए भय का अनुभव करने लगे । इस बात के डर से कि बुरे आदमियों के हाथों में पड़कर उनकी बनाई हुई पनडुब्बी क्या-कुछ कर सकती है, लियोनार्दो के अन्तःकरण ने अपने जहाज को डुबो देने और बोर्गिया से बच निकलने की योजना बनाने के लिए उन्हें बाध्य कर दिया ।

उसके बाद लियोनार्दो ने प्रतिज्ञा की कि वे अब अपने सारे प्रयास उन औद्योगिक मशीनों के आविष्कार की भेंट करेंगे जो मनुष्य के जीवन को नष्ट करने की बजाय उसे संवारेंगी ।

राजनीतिज्ञ इंजीनियर

लियोनार्दो की प्रतिभा की खबर जब मिलान के ड्यूक के कानों तक पहुंची तो उसकी जिज्ञासा उभर आई। उसने लियोनार्दो को अपने महल में बुलवाया, ताकि मंच-सम्बन्धी ऐसे यंत्र तैयार किए जा सकें जो राजदरबार के रोजमर्रा के उत्सवों की चमक-दमक में चार चांद लगा दें। इन सभी रंगरेलियों और धूम-धाम के बीच इटली देश भयानक प्लेग का शिकार हो गया।

जलते छालों और काली पड़ती देह के रूप में मृत्यु ने हज़ारों मनुष्यों को निगलना शुरू कर कर दिया। लियोनार्दो उन चन्द आदमियों में से थे जो प्लेग से बचे हुए थे। पर इस विपत्ति के परिणाम और दुःखी मन के कारण लियोनार्दो में एक भयमुक्त योजना पर चलने की शक्ति का संचार होने लगा।

मिलान उस समय यूरोप का प्रथम नगर माना जाता था। परन्तु सफाई की उचित व्यवस्था के सर्वथा अभाव ने उसे बीमारी का एक उत्पादन-केन्द्र बना रखा था। लियोनार्दो ने इसका नये सिरे से निर्माण करने की योजनाएं बनानी आरम्भ कर दीं। उनके नोटों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वे योजनाएं एक सम्पूर्ण नगर के निर्माण के लिए इतिहास में प्रथम लिखित योजनाएं हैं।

उनके योजनाबद्ध नगर में 500 घंटों की दस इकाइयां थीं। इसमें इर्दगिर्द की दलदली ज़मीन के कीचड़ के निकास की व्यवस्था थी। नगर के सभी मुहल्लों को और घरों के समूहों के बीच सुन्दर बगीचों के कलात्मक चश्मों को ज़मीन के नीचे से नालियों द्वारा पानी पहुंचाने की व्यवस्था थी। चौड़ी सड़कें थीं, जिनके किनारों के साथ गन्दी नालियां थीं और बाज़ारों की सड़कों पर दुर्गन्धिले विहारस्थल बने थे। सब मिलाकर, यह एक खुला-कुशादा नगर था, जो स्वास्थ्यकर रोशनी और हवा के सुख से परिपूर्ण था।

इस सारी व्यवस्था का खर्च बरदाश्त करने के लिए लियोनार्दो ने उन वस्तुओं के लिए कारखाने खोलने का सुझाव दिया जिनकी मांग सारा यूरोप करेगा। यह योजना कोई हवाई किला

नहीं थी, क्योंकि उन्होंने सभी मशीनों के डिजाइन तैयार कर लिए थे और अपने नक्शों में पूर्ण रूप से उनकी व्याख्या कर दी थी कि हम दंग रह जाते हैं।

उदाहरण के लिए, उन्होंने एक ऐसी मशीन का नमूना तैयार किया जो एक घंटे में 40,000 सुइयां बना सकती थी, बेलने की एक मशीन बनाई जो टीन की एक जैसी चदरें काटती थी, एक औजार बनाया जो अन्दर से खोखला सिलिंडर तैयार करता था, ऐसी मशीनें बनाई जो रेतियां बनाती थीं, कपड़े में सिकुड़ने डालती थीं और रस्से बटती थीं। उनकी योजनाओं में बिजली से चलनेवाले हथौड़े, क्रेन, करघे और सभी प्रकार की कल-मशीनें सम्मिलित थीं, जिन्हें एक मशीन-युग की उन्नति के समारंभ के लिए केवल भाप के एक इंजन की आवश्यकता थी।

जब प्लेग की बीमारी खत्म हो गई तो मिलान का ड्यूक इतना डगमगा चुका था कि उसने नगर की पुनर्निर्माण-योजना बनाने में लियोनार्दो की समझ-बूझ के आगे घुटने टेक दिए। प्लेग के दोबारा फूट पड़ने के खतरे को दूर करने के लिए लियोनार्दो ने मिलान के आसपास दलदली जमीन को साफ कराने और नालियों आदि की शानदार व्यवस्था करने की अपनी परियोजना आरम्भ कर दी। यह व्यवस्था आज भी काम में लाई जा सकती है।

युद्ध के अचानक खतरे ने उस आधुनिक नगर की नींव रखने दी। इस काम से हटाकर लियोनार्दो को किलाबन्दी का काम करने पर मजबूर कर दिया गया।

दा विंची के कुछेक दूसरे आविष्कारों को कभी कार्यरूप नहीं दिया गया। किसी हद तक इसका कारण उनकी मशीनों को चलाने के लिए बिजली के उपयुक्त साधनों का अभाव था। मीनारनुमा पवनचक्की का उनका आविष्कार, शायद भाप-इंजन बनने तक, प्रधान चालक शक्तियों को चलाने की युक्ति में एक मूल सुधार था।

विज्ञान-सम्बन्धी उनके ज्ञान का विशाल भंडार जिसका निचोड़ उनकी नोटबुकों और पाण्डुलिपियों के पांच हजार पृष्ठों में मिलता है, अन्य आविष्कर्ताओं के लिए विचारों तथा प्रेरणा का स्रोत सिद्ध

हुआ है। उनके संगृहीत प्रयोगों की समृद्ध सम्पत्ति ने संसार के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया है कि वे संसार-भर के सर्वोत्तम बहु-मुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे।

उन्होंने द्रव इंजीनियरी की नींव रखी। उन्होंने ही ध्वनि-कम्पन की लहरियों को मापा और उपरितान की अनुगूँज और स्पन्दन की व्याख्या की। उन्होंने न्यूटन से दो सौ वर्ष पूर्व ही ऊपर से नीचे गिरती वस्तु की बढ़ती हुई गति को समझा। उन्हींके द्वारा बैरोमीटर तथा थर्मामीटर जैसे यंत्रों का आविष्कार हुआ। प्रकाश और गर्मी की तरंगों का सिद्धान्त, जो एक लहर-गति का सिद्धान्त है, उन्हींका बनाया हुआ है। उन्होंने चांद को ज्वार के कर्षण का कारण बताया। उन्होंने वायु में जल और आक्सीजन की मिलावट का विश्लेषण किया।

उन्होंने समुद्र में तैरनेवाले पीपों या बोयाओं पनडुब्बियों और गहरे समुद्र में गोता लगाने के गियर का डिजाइन बनाया। उनके द्वारा बनाई गई बजूका तोपों, टैंकों, पिछले भाग से भरी जाने-वाली तोपों, तोपवाहक गाड़ियों आदि जैसे प्रतिरक्षा-सम्बन्धी शस्त्रास्त्रों के सम्बन्ध में पढ़ने से ऐसा लगता है मानो आधुनिक शस्त्रास्त्रों की सूची तैयार की गई हो।

संसार के सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों और मूर्तिकारों में तो वे गिने ही जाते हैं, पर वे इतने ही महान शरीर-रचनाविद्, वनस्पतिविद्, जीवशास्त्री, इंजीनियर, भवन-निर्माता, गणितज्ञ, मानचित्र-निर्माता और पुरा-प्राणिशास्त्री भी थे। उन्होंने आज के सुप्रवाही आकार के भवन-निर्माण के सम्बन्ध में पहले से ही अनुमान लगा लिया था। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बड़े पैमाने पर उत्पादन, पूर्व निर्मित भवनों और नगर-आयोजना को समझा।

इस धरती पर, लियोनार्दो ही केवल ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने काल की इतनी ऊटपटांग रुकावटों के होते हुए भी भविष्य में भाँका और हमारे मशीन-युग के मध्यकाल की मानसिक सैर की।

आज सभी जगहों के वैज्ञानिक लियोनार्दो दा विंची को मशीन-युग के पिता का दर्जा देते हैं।



2. सार्वभौमिक शक्ति का स्रोत

लियोनार्दो दा विंची ही अपने काल में एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने जान लिया था कि छः सादी मशीनें सभी यांत्रिक गतियों का आधार हैं। रंदा, लीवर (उत्तोलक), पच्चड़ और गरारी को चक्र तथा धुरी और पेंच के साथ जोड़कर अनन्त प्रकार की ऐसी गतियां पैदा की गई हैं जिनके कारण वस्तुतः हर सभ्यता आगे बढ़ी है।

प्राचीन मनुष्य ने सम्भवतः लुढ़कते लट्ठे से पहला चक्र बनाना सीखा। दो पतले टुकड़े काटकर इन्हें एक धुरी के सिरों पर जोड़ देने से शायद सीधी-सादी बैलगाड़ी का सूत्रपात किया गया हो। मनुष्य का कौशल उन्नत हुआ और तब उसने अनगढ़ चक्रों को वजन में हल्का बनाया और पहिये के घेरे में और सुधार किया। यह सुधार आरों (स्पोक) को पहिये के घेरे (रिम) और धुरी की नाभि के साथ जोड़ देने से किया गया। ये मजबूत और हम-वार पहिये उन सशस्त्र रथों के साथ जोड़ दिए गए जिनके आगे तेज घोड़े जुते थे। तब शीघ्र ही ये रथ रणक्षेत्रों में दौड़ते दिखाई देने लगे। प्राचीनकाल का पच्चड़ पहले-पहल एक छड़ी था और फिर एक ऐसा भाला था जिसके सिरे पर पत्थर लगा था और इसके बाद यह धनुष से छूटा बाण बना।

गरारी ने सभ्यता के कीर्ति-स्तम्भों के निर्माण के लिए भारी पत्थर उठाए। लीवर ने राजमार्गों और पुलों के निर्माण में बड़ी-

बड़ी चट्टानों को परे धकेल दिया । पेंचों ने इमारतों के तख्तों को आपस में जोड़ दिया । अनाज पीसनेवाली पत्थर की चक्कियों से निकलता हुआ आटा ढालदार समतल तख्ते पर होकर नीचे आने लगा ।

उस समय तक अधिक सुसम्पन्न यंत्रों की आवश्यकता दिखाई नहीं दी जब तक किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न नहीं हुआ कि वायु और जल भी मनुष्य की सहायता के लिए शक्ति का स्रोत बन सकते हैं । इस विचार के परिणामस्वरूप वह चक्का बना जिसकी परिधि पर प्यालेनुमा टुकड़े लगे थे । यह चक्का जलधारा से घूमता था और पानी इसके निचले हिस्से में चोट करता था । इसे 'ग्रैंडर शॉट वाटर व्हील' कहा जाता था । जब बारी-बारी से पवनचक्की के पलकों के किनारों पर हवा टकराने लगी तो पवनचक्की चल निकली, जिससे चक्की के भारी पुड़ों (पत्थरों) ने घूमना आरम्भ किया । निस्संदेह, मनुष्य की शक्ति के स्थान पर काम में आनेवाले शक्ति के ये दो स्रोत ऋतु की परिस्थितियों पर निर्भर करते थे ।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, लियोनार्दो ने एक नई मीनारनुमा पवनचक्की बनाई जिसके ऊपर सिरे पर जंगे पंखे घूम सकते थे ताकि जिस दिशा से भी हवा आ रही हो उससे लाभ उठाया जा सके । कोई 200 वर्ष बाद जब भाप के इंजन का आविष्कार हुआ, तब तक लियोनार्दो द्वारा बनाया गया पवनचक्की का यह नमूना यंत्र-रचनाओं को गति देने के काम में अंतिम मूल सुधार था ।

जब तक लियोनार्दो ने यंत्र-विज्ञान के मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट नहीं किया था और अपनी नोटबुकों में इसकी संभावनाओं पर प्रकाश नहीं डाला था, तब तक इसका एक विज्ञान के रूप में मुश्किल से ही उपयोग होता था । फिर भी, उनके विचार बातों-बातों में फैल गए और इटली, फ्रांस और इंग्लैंड के अन्य आविष्कर्ताओं को प्रेरित करते रहे ।

सार्वभौमिक शक्ति के स्रोत की खोज लगभग 1600 ई० से

पहले तक आरम्भ नहीं हुई थी। उस समय एक पुस्तक, जो मिस्र के नगर अलेक्जेंड्रिया में सबसे पहले प्रकाशित हुई थी, अंग्रेजी में अनूदित हुई। हेरो नामक लेखक की इस पुस्तक में, जिसका शीर्षक था 'न्युमेटिका' एक ताप-इंजन की व्याख्या की गई थी। अन्दर से खोखले गोले को दो टेकों के बीच ऐसे टिका दिया गया था कि वह घूम सके। इस गोले में भाप एक चूल द्वारा अन्दर जाती थी और दो मुड़ी हुई नलियों द्वारा निकल जाती थी। टोंटियों द्वारा छूट रही भाप के कारण गोला घूमता था। इससे भाप छूटने की प्रतिक्रिया का सिद्धान्त सामने आया। परन्तु इस गोले का उपयोग केवल एक खिलौने के रूप में किया गया।

पहला 'दमकल'

हेरो द्वारा की गई भाप के एक मशीनी खिलौने की व्याख्या से इंग्लैण्ड में प्रतिक्रिया का एक क्रम चल निकला। उस समय खान खोदने के तरीके प्राचीन रोम के काल के बाद से बदले नहीं थे। जिन खानों में पानी भर जाता था उन्हें लम्बी जंजीरों से बंधे धातु के कटोरों से खाली किया जाता था। सबसे अधिक व्यापक तरीका यह था कि खड़ी नालियों में से छः-छः फुट की दूरी पर, घोड़े के बालों के पानी चूसनेवाले भारी गट्ठे खींचे जाते थे। ऊपरी सिरे पर इन गट्ठों को निचोड़ लिया जाता था। इस पुराने तरीके में दो आदमी या एक घोड़े को पाँव के पहिये पर काम करना पड़ता था।

कहीं-कहीं पानी निकालनेवाले घटिया किस्म के पम्प इस्तेमाल किए जाते थे। परन्तु पम्प के नमूने में पहला सुधार, हालैण्ड के भौतिक-शास्त्री क्रिश्चियन ह्यूगेन्ज द्वारा आविष्कृत वैक्यूम पम्प से हुआ। भाप तथा वैक्यूम ने आविष्कर्ताओं के मस्तिष्कों को गति दी। ह्यूगेन्ज के एक शिष्य डेनिस पेपिन ने भाप के पम्पों की यन्त्र-रचना पर प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। जब पेपिन इंग्लैण्ड में जा बसे, तो उन्होंने देखा कि उस देश को एक राष्ट्रीय संकट का सामना करना पड़ रहा है।

खुली खानों से कोयला और लोहा निकलना प्रायः बंद हो गया था। गहरी खानों में धरती के नीचे के सोतों के कारण पानी भर गया था जिससे वे बेकार पड़ गई थीं। पानी को बाहर निकालने के लिए कोई नई विधि निकालनी आवश्यक थी।

खानों के मालिक ऐसे तरीके काम में ला रहे थे जिनमें बड़ी वीरता दिखानी पड़ती थी। 24 फुट चौड़ाई के रहटों में 500 तक घोड़े जोते जाते थे जो हस्त-घर्घरियों और गरारियों से बंधे बड़े-बड़े पानी के डोल खींचते थे। फिर भी पानी से लबालब भरी खानों के सामने वे टिक नहीं पाते थे। राज्य की सम्पत्ति ज़मीन में दबी पड़ी थी। वहां तक पहुंच पाना असम्भव हो गया था। सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने वैज्ञानिकों की रायल सोसाइटी से अनुरोध किया कि वह कोई सम्भव उपाय ढूंढ़े।

डेनिस पेपिन उस समय थामस हूके की प्रयोगशाला में काम कर रहे थे जो रायल सोसाइटी के प्रबन्धक थे। उन्होंने भाप-पम्प पर प्रयोग करने के लिए पेपिन को प्रोत्साहित किया। जब पेपिन ने अतिशय गरम भाप के लाभ पर अपनी पुस्तक पूरी कर ली तो उन्होंने रायल सोसाइटी के सम्मुख भाप के इंजन के सिद्धान्त का प्रदर्शन करने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने लोहे की पिस्टन-छड़ के साथ जुड़े एक सिलिण्डर के तल में पानी डाला और पानी को उबाला। भाप ने छड़ को ऊपर धकेल दिया। जब उन्होंने नीचे से आंच हटा दी तो सिलिण्डर ठण्डा पड़ गया, जिससे भाप घनी हो गई और उसमें शून्यता आ गई, जिसके कारण छड़ नीचे गिर गई। तब उन्होंने अपने प्रयोग का वह भाग दिखाया जिसे देखकर आदमी चकित हुए बिना नहीं रह सकता था। उन्होंने सिलिण्डर के ऊपर एक छड़ रख दी। इस छड़ का एक सिरा पिस्टन-छड़ से बांध दिया और दूसरा बाल्टी के साथ। ज्योंही छड़ नीचे आई, बाल्टी ऊपर भूल गई। यह संसार का पहला प्रदर्शन था जिसने बताया कि केवल भाप की शक्ति और वायुमण्डलीय दबाव के द्वारा खानों से पानी कैसे निकाला जा सकता है।

पेपिन की खोज ने यह दिखा दिया कि केवल इसी तरीके से

इंग्लैण्ड की खानों का बचाव हो सकता है। एक व्यावहारिक 'दमकल' बनाने के लिए कई वैज्ञानिकों और मशीनसाजों में होड़ शुरू हो गई। पहले के ये 'आग-इंजन' या 'दमकल' भयानक रूप के विस्फोटक होते थे जिनसे लोग भय खाते थे और जिन्हें देखकर वे चकित रह जाते थे। भाप-इंजन के बनकर तैयार होने तक कई प्रयोगकर्ताओं को जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा था और भाप की भुलसा देनेवाली शक्ति को सिधाने में सफल होने से पहले कई एक को जीवन का बलिदान देना पड़ा।

अन्त में, थामस सेवरी पहले भाप-इंजन को चलाने में सफल हुए। अपने आविष्कार के सर्वाधिकार को सुरक्षित रखने के लिए दिया गया उनका प्रार्थना-पत्र अभी तक सुरक्षित है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है :

“अग्नि की आगे धकेलने की शक्ति की सहायता से पानी खींचने और चक्की के सभी प्रकार के काम को गति देने के लिए एक नया आविष्कार हुआ है, जो खानों में से पानी निकालने, नगरों को पानी पहुंचाने और उन सभी प्रकार के कारखानों को चलाने के लिए बहुत उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होगा, जिन्हें न तो पानी और न निरन्तर वायु का ही लाभ प्राप्त है।”

यह भीमकाय इंजन बहुत बड़ी मात्रा में पानी खींचता था। परन्तु इसका दबाव इतना कम था कि मुतवातिर गहरी हो रही खानों के लिए यह अधिक उपयोगी सिद्ध न हुआ। फिर भी यह इंजन मानो एक वरदान था जिसकी सहायता से आसपास के नदी-नालों और झीलों से शहरों को पानी पहुंचाया जा सकता था।

1712 में थामस न्युकोमेन को, जो एक ईसाई बैप्टिस्ट पादरी थे और विज्ञान में दिलचस्पी रखते थे, बॉयलर से सिलिण्डर को अलग करने का विचार सूझा। उनके वायुमण्डलीय इंजन में दो डाटें लगी थीं जिनमें एक बॉयलर से आ रही गरम भाप की ओर खुलती थी और दूसरी ठण्डे पानी की ओर, जो भाप को ठण्डा करता था। इस दैत्याकार इंजन ने, जिसका पिस्टन भाप

द्वारा ऊपर उठता था और वायुमण्डल के दबाव से नीचे बैठता था, एक मिनट में छः बार ऐसा किया जिससे 2½ टन पानी खींचा गया और खर्च आया एक बुशल (29 सेर) कोयला ।

हम्फ्रे पाँटर नामक एक बालक को हर पांच सेकण्ड के बाद एक लीवर को खोल देने और बन्द कर देने के काम पर नौकर रख लिया गया । इस कठिन काम में पसीना-पसीना होने और मशीन की तरह काम करने के कई दिनों बाद उस बालक ने न्युकोमेन के पहले इंजन के चलाने के काम को सरल बनाने के लिए कुछ अपना आविष्कार करने का निश्चय किया । अपने सिर के ऊपर एक शहतीर का बारी-बारी उठना और बैठना देखते हुए उसके मन में विचार उठा कि क्यों न इस गति को उन लीवरों को बारी-बारी ऊपर उठा देने और नीचे दबा देने के काम पर लागू किया जाए जो डाटों पर अपना नियंत्रण रखते हैं । कुछ ही समय में उसने अपने सिर के ऊपर नीचे-ऊपर आते शहतीर के साथ उपयोगी डोरियां और हथियां बांधकर अपनी समस्या का हल निकाल लिया ; चूंकि यह काम अपने-आप चल सकता था, बालक को आराम से पीछे टेक लगाकर बैठ जाना होता था, और इस काम पर केवल नज़र रखनी पड़ती थी । प्रतिभा के इस चतमकार का अत्यन्त आश्चर्यजनक फल यह हुआ कि पिस्टन की चोट की संख्या एक मिनट में छः से बढ़कर सोलह हो गई ।

न्युकोमेन के इंजन 75 वर्ष तक सफलता से अपना काम देते रहे । इन्होंने वास्तव में इंग्लैण्ड की खानों को पानी की बाढ़ से बचा लिया । फिर भी खानें नीचे ही नीचे गहरी होती गईं । यहां तक कि वे एक सौ फुट तक गहरी हो गईं । तब न्युकोमेन के इंजन की शक्ति भी जवाब दे गई । गहरी खानें और भाप-इंजन गति-रोध में फंस गए ।

इंग्लैण्ड में लोहे की खानें

लोहे की ज़रूरत कभी कम नहीं हुई और इंग्लैण्ड में लोहे की इतनी वस्तुएं बननी आरम्भ हुई कि धड़ाधड़ लोहे के कारखाने

खुलने लगे ।

फिर भी कच्ची धातु से लोहा निकालने की विधि वही पुरानी थी जो प्राचीनकाल से चली आ रही थी । यह विधि इस प्रकार थी : एक बड़ी चौड़ी खाली कुठाली में लकड़ी के कोयलों की एक तह जमा दी जाती थी और कुठाली को एक खुली धधकती भट्ठी पर चढ़ा दिया जाता था । उन कोयलों की तह पर कुछ चूना मिली कूटी हुई कच्ची धातु की एक तह जमाई जाती थी । फिर इसके ऊपर कोयले की एक तह लगाई जाती और उसके ऊपर कच्ची धातु की एक और तह । इस मिश्रण को धौंकनियां चलाकर खूब गरम किया जाता, जिससे ताप इतना बढ़ जाता था कि कोयले कच्ची धातु की आक्सीजन से मिल जाते और लोहा शेष बच रहता ।

जब लोहा पिघल जाता तो उसे सांचों में ढाल दिया जाता । चूंकि ठोस बनते समय वह फैल जाता था इसलिए सांचे में कसकर जम जाता था । ऐसे लोहे को ढलवां लोहा कहते हैं और इसमें पांच प्रतिशत कार्बन होता है । जब इस ढले हुए लोहे को फिर दोबारा गरम किया जाता है तो कार्बन की मिलावट करीब एक प्रतिशत रह जाती है । इसे हथोड़े से कूटकर जो चाहें रूप दे सकते हैं । इसे व्यंगारित या पिटा लोहा कहा जाता है । इस व्यंगारित लोहे को लकड़ी के कोयले से गरम करके इसके लाल सुखं द्रव को पानी में ठण्डा करने से इस्पात बचाया जाता था । जब इसमें बहुत थोड़ा कोयला रह जाता था तो इसमें बड़ा बल आ जाता था और इसकी बहुत पतली धार निकाली जा सकती थी ।

जब समुद्री जहाज बनाने के काम में लकड़ी के लिए जंगलों के जंगल साफ किए जाने लगे तब इस विधि में परिवर्तन आवश्यक हो गया । लकड़ी के कोयले की जगह पत्थर का कोयला ढूँढ़ निकाला गया जो खनिज कोयले को गरम करने से बनता था । न्युकोमेन इंजन के आसपास के समय में पत्थर के कोयले का उपयोग आम हो चला । कोयले की खानों के निकट लोहे के कारखाने खुलने लगे । कोयले और लोहे के खान-मजदूर,

यों नहीं हो सकती । पूर्ण साधना द्वारा यदि उसकी प्राप्ति हो जाय तो भवताप से चिर-निर्वृत्ति हो जाय और आत्मा की प्यास सब दिन के लिये बुझ जाय । “सरग आइ धरती महँ छावा”—स्वर्गीय अमृत तत्त्व इसी पृथ्वी में व्याप्त है पर पकड़ में नहीं आता । इसी भाव को जायसी ने ‘अखरावट’ में अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट किया है—

आपुहि आपु जौ देखै चहा । आपनि प्रभुत आपु से कहा ॥

सबै जगत दरपन कै लेखा । आपुहि दरपन, आपुहि देखा ॥

आपुहि बन औ आपु पखेरू । आपुहि सौजा, आपु अहेरू ॥

आपुहि पुहुप फूलि बन फूलै । आपुहि भँवर बास-रस भूलै ॥

आपुहि घट घट महँ मुख चाहै । आपुहि आपन रूप सराहै ॥

दरपन बालक हाथ, मुख देखै, दूसर गनै ।

तस भा दुइ एक साथ, मुहमद एकै जानिए ॥

“आपुहि दरपन, आपुहि देखा” इस वाक्य से दृश्य और द्रष्टा, ज्ञेय और ज्ञाता का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता है । इसी अर्थ को लेकर वेदांत में यह कहा जाता है कि ब्रह्म जगत् का केवल निमित्त कारण ही नहीं, उपादान कारण भी है । “आपुहि आपु जो देखै चहा” का मतलब यह है कि अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार जब देखना चाहा । शक्ति या माया ब्रह्म ही की है, ब्रह्म से पृथक् उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं । “आपुहि घट घट महँ मुख चाहै”—प्रत्येक शरीर में जो कुछ सौंदर्य दिखाई पड़ता है वह उसी का है । किस प्रकार एक ही अखंड सत्ता के अलग अलग बहुत से प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं यह बताने के लिये जायसी यह पुराना उदाहरण देते हैं—

गगरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै ।

सूरज दिपै अकास, मुहमद सब महँ देखिए ॥

जिस ज्योति से मनुष्य उस परमहंस ब्रह्म की छाया देखता है वह स्थिर है क्योंकि वह ब्रह्म ही है । वह ब्रह्म-ज्योति अपनी माया से आच्छादित होने पर भी न उससे मिली हुई कही जा सकती है, न अलग—मिली हुई इसलिये नहीं कि नामरूपात्मक दृश्यों का उसके स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता; अलग इसलिये नहीं कि उसके साथ ही उसकी अभिव्यक्ति छाया रूप में रहती है—

देखेऊँ परमहंस परछाहीं । नयन-ज्योति सौं बिहुरति नाहीं ॥

जगमग जल महँ दीपै जैसे । नाहिं मिला नहिं बेहरा तैसे ॥

कुदालों, बेलचों, गदालों, भारी हथौड़ों और बारूद के फीतों के साथ नई खानें खोदने लगे। रस्सों से खनिज लोहा खानों से निकालकर दूर लकड़ी की उन गाड़ियों में भरा जाने लगा जो लोहे की पटरियों पर चलकर उसे कारखानों तक पहुंचाती थीं, वहां फिर उसे पिघलाकर तोपों और पुलों का सामान बनाया जाने लगा।

गहरी खानों में पानी की तहों के नीचे सोए हुए दैत्यों के समान ऐसे साधन पड़े थे कि बस, एक आविष्कर्ता के हाथ की जादू की छड़ी के इशारे की देर थी कि मशीन-युग चल पड़ता। कोई नहीं जानता था कि इतिहास के बस अगले मोड़ पर खनिज धातु ढोने के लिए घोड़ों के बजाय बौने इंजन, कुदालों की जगह हवा के दबाव से चलनेवाले बर्मे, लोहे की बाल्टियों के स्थान पर बोझा उठाने की मशीनें, अपने-आप वस्तुएं लादनेवाली मशीनें, बिजली द्वारा जमीन के अन्दर सामान खींचने के लिए केन्द्रीय बिजलीघर, कोयला काटने की मशीनें और रोशनी की व्यवस्था करनेवाले यंत्र होंगे।

वह चिनगारी जिसने इतना जादुई परिवर्तन कर दिखाया, ग्लासगो विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक और औजारसज्ज के हाथों जगी।

जेम्स वाट

ग्लासगो विश्वविद्यालय कई वर्ष तक कक्षाओं में प्रदर्शन के लिए न्युकोमेन इंजन के एक छोटे नमूने से ही काम लेता आ रहा था। अचानक इस इंजन ने काम करना बन्द कर दिया और विश्व-विद्यालय के एक नौजवान औजारसज्ज जेम्स वाट को इसकी मरम्मत के लिए बुलाया गया। मशीनी खराबी को शीघ्र ही ठीक किया गया, परन्तु वाट रसायन-शास्त्र के प्राध्यापक जोसेफ ब्लैक द्वारा प्रस्तुत नये सिद्धान्त की ओर आकर्षित हो चुके थे। वाट के मित्र ने, जो पहले वैज्ञानिक थे तथा जिन्होंने यह विचार रखा था कि ताप भी एक ऐसी वस्तु है जिसे मापा जा सकता है, बताया

कि इंजन वास्तव में अपनी शक्ति का पांच-चौथाई भाग नष्ट कर देता है। प्राध्यापक ब्लैक ने कहा कि इस हानि को रोकने के लिए केवल यही एक रास्ता है कि स्वयं सिलिण्डर के ताप को सदा उस भाप जितना गरम रखना चाहिए जो इसमें प्रवेश करती है।

इस प्राध्यापक के नवीन सुभाव ने वाट के चिन्तन की नई राहें खोल दीं। इंजन कैसे चलता है, यह बात आहिस्ता-आहिस्ता उसके निकट भोजार बनाने के काम से अधिक महत्वपूर्ण होने लगी। वह सोचने लगा, यदि मुख्य रूप से उस पानी के कारण जो सिलिण्डर में प्रवेश करता है, गर्मी कम हो जाती है, तो क्यों न लाल-सुर्ख सिलिण्डर को बीच-बीच में ठण्डे पानी के छिड़काव से अलग रखा जाए ?

वाट ने सोचा, सम्भवतः भाप को एक अलग सिलिण्डर में पहुंचाया जा सकता है और वहां उसे संघनित किया जा सकता है। इस तरह पहले सिलिण्डर को बराबर गरम रखा जा सकता है। इसमें केवल एक कठिनाई थी। क्या केवल फैलाए जाने से भाप वास्तव में एक अलग सिलिण्डर में बहना शुरू भी करेगी ? इसे जानने के लिए एकमात्र रास्ता था—इंजन का एक नया नमूना तैयार किया जाए।

चन्द दिनों में ही वाट का नमूना परीक्षा के लिए तैयार था। उसमें भाप पहले सिलिण्डर की तह में प्रवेश करती, वहीं फैलती और पिस्टन को ऊपर धकेल देती। वाट सांस रोके इसे देखता रहा। पिस्टन ऊपर सिरे पर लगे खुले वाल्व से गुजर गया, जहां से भाप निकल सकती थी। इंजन पम्प चलाता रहा। वाट खुशी से उछल पड़ा। उसका इंजन न केवल चल निकला, बल्कि वह न्युकोमेन इंजन से चार गुना ज्यादा तेज चलता था।

चूंकि पहला सिलिण्डर अपने ताप का स्तर कायम रख सका, इंजन को चलाए रखने के लिए कोयले का कम खर्च बैठा। जो खानें बहुत गहरी जा चुकी थीं, वहां न्युकोमेन के इंजन बेकार पड़ गए। वाट ने खान-उद्योग को अपने नये इंजन द्वारा पुनरुज्जी-

वित किया। यह 29 वर्षीय आविष्कर्ता इस बात से बेखबर था कि उसके भाग्य में इतिहास का रूख बदलना बड़ा है।

रास्ते की बाधा

वाट के लिए प्रशिक्षित कारीगरों को नौकर रखने की अपेक्षा धन लगानेवाले व्यक्ति को ढूँढ़ निकालना आसान था। ऐसे प्रशिक्षित कारीगर उन दिनों प्रायः थे ही नहीं। शीघ्र ही उसने जान लिया कि यदि उसे अपना इंजन बनाना ही है तो उसे लगभग सारा काम, और तो और, अपने औजार तैयार करने का काम भी स्वयं ही करना होगा।

इस एक व्यक्ति की परियोजना को निराशाजनक बाधाओं के एक क्रम का सामना करना पड़ गया। बार-बार अपने इंजन के ठप पड़ जाने से उसे नई सामग्री की खोज में इधर-उधर मारे-मारे फिरना पड़ता था। पतले-से टीन के सिलिण्डर को बार-बार बदलना पड़ता था। सिलिण्डर को एक ठीक सीधी रेखा में तैयार करना असम्भव था। इसी बीच वाट का आर्थिक सहायक व्यग्र हो उठा और उसने सारी परियोजना त्याग दी।

तीन वर्ष के पश्चात्, फैंसी बटन बनानेवाले मैथ्यू बोल्टन ने वाट को साभेदारी के युक्तिसंगत आधार पर अपने इंजन पर प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन दिया।

बोल्टन का एक अंतरंग मित्र जॉन विल्किंसन, जो पास ही लोहे के एक कारखाने का मालिक था, यह देखने के लिए वाट से मिलने अक्सर आ जाता, कि नये इंजन पर काम कैसे चल रहा है। उसने वाट को यह भेद की बात बताई कि ताप के लिए उसके कारखाने ने हाल ही में लकड़ी के कोयले की जगह पत्थर के कोयले का उपयोग करना आरम्भ कर दिया है। चूँकि पत्थर के कोयले को जलाने के लिए हवा के लगातार भोंकों की जरूरत पड़ती थी, उसने वाट के इंजन में यह सम्भावना देखी कि हाथ की धौंकनियां अपने-आप चल सकती हैं और इस तरह किसी मनुष्य से कहीं अधिक अच्छे ढंग से और तेजी के साथ आग

भड़काने का काम लिया जा सकता है। अपने कारखाने में भाप-इंजन को इस्तेमाल करने की कल्पना ने विल्किंसन को सिलिण्डर को हर त्रुटि से मुक्त करने के काम में वाट की सहायता करने को प्रेरित किया।

शीघ्र ही विल्किंसन ने पता लगा लिया कि जिन विशिष्ट विवरणों की आवश्यकता है उन्हें पूरा करने के लिए मनुष्य के हाथ और आंखें इतने ठीक साधन नहीं जितनी की आवश्यकता है। एक नया मशीनी रख अपना होगा। विल्किंसन ही पहला व्यक्ति था जिसने पहली खराद और अपने-आप चलनेवाला ऐसा बर्मा तैयार किया जिसमें छेद करनेवाला औजार अपनी जगह पर स्थिर रह सकता था और ठीक रेखा पर सही चञ्चल सकता था। तभी विल्किंसन, सिलिण्डर की सारी लंबाई के साथ-साथ एक सही चौड़ाई रखने में सफल हो सका।

मशीनी और गणितीय विशुद्धता ने भाप की शक्ति को नियंत्रण में रखा। विल्किंसन के कारखाने में अपने सिलिण्डर के अन्दर बिना बाधा के बन्द पिस्टन धौंकनियों को चलाने में थकता ही नहीं था। यह 1776 का वर्ष था।

अन्त में बोल्टन और वाट की फर्म ने व्यापार करना आरम्भ कर दिया। बोल्टन ने खान-मालिकों को एक नया भाप-इंजन मुफ्त भेंट कर अपनी व्यवसायी प्रतिभा को सिद्ध कर दिया। उन मालिकों को बचे कोयले की मात्रा का केवल एक-तिहाई भाग रायल्टी के रूप में देना पड़ता था।

बोल्टन जानता था कि वाट का बनाया 'कण्डेन्सर' न्युकोमेन इंजन में प्रतिदिन खर्च होनेवाले 13 टन कोयले का दो-तिहाई भाग बचा लेगा। खान-मालिकों के लिए यह भेंट अत्यन्त आकर्षक थी। वे खुशी से प्रतिदिन कोई तीन टन कोयले की कीमत अदा करने को तैयार थे। क्योंकि इस तरह वे स्वयं वास्तव में प्रतिदिन कोई आठ टन कोयले की कीमत बचा सकते थे।

पानी निकालने में इस नये इंजन (जो केवल 20 अश्वबल का था) की अत्यधिक शक्ति ने न्युकोमेन इंजन को सदा के लिए

खत्म कर दिया । वाट-इंजन को खरीदने के लिए लोग दौड़ पड़े । १७८३ तक केवल एक न्युकोमेन इंजन देखने में आता था ।

घूमनेवाला इंजन

वाट के चमत्कारी इंजन के लिए सारे संसार से मांग आने लगी । पत्रों के ढेर के ढेर लग गए, जिनमें वाट से आग्रहपूर्ण प्रार्थनाएं की गई थीं कि वह अपने इंजन को रस्से लपेटने और रुई कातने जैसे काम करने के योग्य बनाए । वाट ने जान लिया कि उसके पिस्टन की ऊपरी और नीचे की चोट की उपयोगिता सीमित है । उसे एक मुख्य चुनौती का सामना करना था—अपने इंजन को एक सार्वभौमिक शक्ति में कैसे बदल दे ?

अपने पिस्टन को एक चक्र चलाने के योग्य बनाने के लिए कैसे घूमनेवाली गति में बदल दिया जाए ? यह एक ऐसी समस्या थी जिसने वाट को पांच वर्ष तक प्रयोगों में निमग्न रखा ।

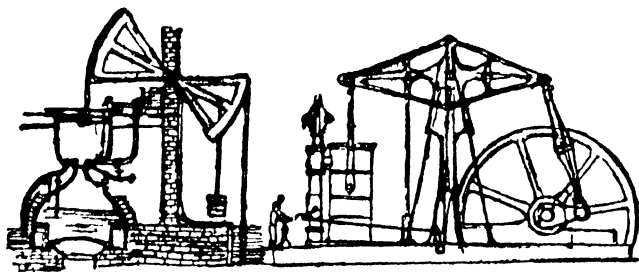
जिस कार्य में वाट सफल हुआ वह आज भी संसार में हर इंजन और पम्प का आधार बना हुआ है । उसने एक पिस्टन छड़ को एक चालन छड़ के साथ एक सिरे द्वारा जोड़ दिया । चालन छड़ का सिरा एक चालन धुरे के साथ बांध दिया । इस तरह पिस्टन छड़ की आगे-पीछे चलने की गति से चालन धुरा घूमने लगता ।

चालन धुरा एक चक्के को चला देता था जो ऐसे पट्टे को घुमाता जिससे दूसरी मशीनें चल निकलतीं । बाद में इस चालन धुरे को चालन चक्र में लगा दिया गया । पिस्टन की आगे-पीछे चलने की गति से चक्र पूरा घूम जाता । चक्र का पूरा घूमना ही भाप के प्रचलन का आधार बना । फिर भी घूमता हुआ प्रचल इंजन अभी तक त्रुटिहीन नहीं बन पाया था । यह इंजन तब तक ठीक-ठाक चलता रहता जब तक पट्टा दूसरी मशीन चलाता रहता । जब दूसरी मशीन रुक जाती तो वाट-इंजन खूब तेज चलने लगता । भाप को बंद करने से ही उसपर काबू पाया जा सकता था ।

वाट ने 'श्रॉटल वाल्व' और लोहे के स्वतन्त्र गोलों की एक ऐसी जोड़ी पर प्रयोग किया जिसे वह 'स्वचालित नियामक'

कहता था। इन दोनों गोलों को इंजन की गति द्वारा बराबर घूमने दिया गया। जब इंजन खूब तेज चलने लगा तो गोले अलग होकर दूर परे जा हटे जिससे 'श्राटल वाल्व' बंद हो गया और बॉयलर से जो भाप इंजन में प्रवेश कर रही थी वह भी बंद हो गई।

जब भाप का प्रवेश बंद हो गया तो इंजन की गति मंद पड़ गई और साथ ही लोहे के गोले भी आहिस्ता-आहिस्ता घूमने लगे। इनके दोबारा वापस आकर मिल जाने से बंद वाल्व फिर



न्यूकोमेन इंजन

वाट इंजन

खुल गए। भाप ने प्रवेश करना आरम्भ कर दिया और यही प्रक्रिया दोहराई जाती रही। इस तरह इंजन अपनी एक जैसी रफ्तार कायम रख सका।

अंत में, वाट-इंजन ठीक-ठीक चलनेवाला प्रधान चालक बन गया। सुरक्षित तथा नियमित रूप से काम लेने के लिए इस इंजन पर विश्वास किया जा सकता था। इसका पिस्टन समान गति से ऊपर उठता और नीचे बैठता था। इसके छड़, जो चक्र के साथ जुड़े हुए थे, चक्र को घुमाते थे। यह हर स्थान पर काम कर सकता था और जब तक इसमें भाप प्रवेश करती रहती थी यह चलते हुए थकता ही नहीं था, चाहे दिन-रात इसे चलाया जाता।

भाप का युग

यह कहा जा सकता है कि भाप-युग 1781 में वाट के चक्रित इंजन से आरम्भ होता है। 1782 में वाट-इंजन से वस्तुओं को

गढ़नेवाला हथौड़ा चलाया गया । 1784 में कोयले की एक खान ने इसका प्रयोग रस्सा लपेटनेवाली मशीन के रूप में किया । 1785 में इसके द्वारा आटे की चक्की चलाई गई । 1787 में इसने रुई कातना आरम्भ किया । 1810 तक तो 500 वाट-इंजन सूती कपड़े की मिलें चला रहे थे ।

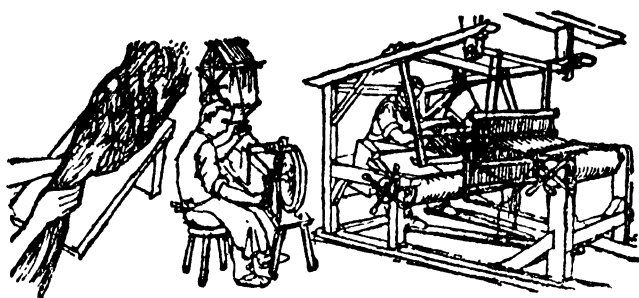
एक पीढ़ी के अन्दर-अन्दर ही समुद्री जहाजों में पांव के चक्के इसीकी सहायता से चलाए जाने लगे । इसीने प्रचल इंजनों में लोहे के चक्र चलाए, बिना कोई वस्तु खराब किए अनाजों से भूसा अलग किया, नदियों से कीचड़ निकाला, दलदली ज़मीन को साफ किया, कागज़ के कारखाने चलाए, शीशे की फैक्टरियां, बर्तनों के कारखाने और लकड़ी चीरने के बड़े-बड़े आरे चलाए ।

इस परिवर्तन को देख आदमी दंग रहे बिना नहीं रह सकता था । 1790 में इंग्लैण्ड की स्थिति प्राचीन रोम के साम्राज्य से भिन्न नहीं थी । वहां पर भी वही डाक-तार की व्यवस्था थी, वैसे ही राजमार्ग थे, वही हल और बैलों की जोड़ी थी, वैसे ही कारीगर जूते, कपड़े अथवा फरनीचर बनाते थे । रोम का बना पतवार वाला समुद्री जहाज वास्तव में एक अंग्रेज़ी नौका को जा पकड़ने में सफल हो सकता था । अंग्रेज़ों की 50 लाख की आबादी कई सदियों तक उसी स्तर पर रही ।

अनायास ही, एक पीढ़ी पश्चात् इंग्लैण्ड की जनसंख्या एक करोड़ दस लाख हो गई । वहां मशीनी चक्कों द्वारा कपड़ा बुना जाता था । बर्मिंघम और मैनचेस्टर के नगर, जो कोयले की खानों के निकट बसे हुए थे, कपड़ा-उद्योग के शहर बन गए और उत्तरोत्तर उन्नति करने लगे । जीवन में नई चहल-पहल दिखाई देने लगी । इंग्लैण्ड एक खेतीबारी के देश से बदलकर संसार का प्रथम औद्योगिक देश बन गया ।

काबू में न आनेवाली भाप अंत में वाट के उस भाप-इंजन में कैद कर ली गई जो ऐसी शक्ति से सम्पन्न दैत्य था जिसे मानव-जाति के मित्र के रूप में सिधा लिया गया था ।

यांत्रिक मानव अस्तित्व में आ गया था ।



3. स्वचालित उंगलियां

यांत्रिक मानव के विकास में हाथों और उंगलियों का बढ़ना पहले चर्खे और बुननेवाली नाल से आरम्भ हुआ ।

1733 में एक अंग्रेज जॉन द्वारा आविष्कृत 'उड़ती' नाल से पहले किसीको नहीं सूझा था कि कपड़ा बुनने की विधि को कैसे तेज किया जा सकता है ।

किसी कपड़े के टुकड़े को देखने से पता चल जाता है कि यह कैसे बना । ताने का एक तार बाने के कई तारों के ऊपर-नीचे से होता हुआ जाता है । पहले बाने के एक तार को छोड़कर दूसरे को ऊपर उठाया जाता है । फिर ताने का तार इसके नीचे से गुजारा जाता है । यह काम करघे के दोनों सिरों पर बैठे हुए जुलाहों के बीच चल रही नाल किया करती थी । एक ओर का जुलाहा इस नाल को दूसरी ओर फेंकता था । अन्त में ताना कस जाता है और कपड़ा सख्त हो जाता है ।

कै की उड़ती नाल ऐसे ढंग की बनी थी कि वह एक हत्थी द्वारा चलती थी जिससे तागा अपने-आप उठ जाता था । इस तरह नाल को फेंकने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी । तब दो की बजाय एक आदमी ही करघे की देखभाल कर सकता था, और वह एक आदमी चार गुना अधिक कपड़ा तैयार कर सकता था । कै के सादा मशीनी हाथ ने कपड़े का उत्पादन इतना

तेज कर दिया कि कातनेवाले पर्याप्त सूत नहीं दे पाते थे । तब कातने की एक नई मशीन की जरूरत हुई, जो बुनकरों को सूत दे सके ।

बर्मिंघम के लेविस पॉल ने भिन्न गति से घूमनेवाले बेलनों की दो जोड़ियों को इस्तेमाल में लाकर चर्खे को त्याग दिया । इन बेलनों की पहली जोड़ी कातने के लिए रुई को अन्दर लेती और दूसरी जोड़ी तेजी से घूमते हुए तागे को खींच देती और इसे तागे में बट देती । कपास के रेशों की यह विशेषता है कि वे एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और आसानी से खिंच जाते हैं । रुई की नरम पूनियां बेलनों में भरी जातीं जिससे इतनी रुई कत जाती कि तेज बुनकरों की मांग पूरी हो सकती थी ।

रुई के कातने और बुनने के बीच उत्पादन का यह संतुलन एक बार फिर इंग्लैण्ड के जेम्स हरग्रीव्स के एक दूसरे आविष्कार ने बिगाड़ दिया । दैवयोग से हरग्रीव्स के बच्चों ने अपनी मां का चर्खा उलट दिया । जब एक तरफ उलटा हुआ चर्खा बराबर कातता रहा तो उसके मन में विचार उठा कि एक तरफ लगे हुए खड़े तकलों का एक सिलसिला उसी चक्र द्वारा घुमाया जा सकता है जिससे कई तागे एक ही समय में काते जाएंगे । हरग्रीव्स ने शीघ्र ही हाथ से चलाया जानेवाला कातने का यंत्र तैयार किया जिसमें एक के बजाय आठ तकले चलते थे । बाद में आठ को बढ़ाकर एक सौ तकले कर दिए गए ।

जब रिचर्ड आर्कराइट ने रहट के साथ एक चर्खा लगा दिया, तब तागा और भी तेजी से काता जाने लगा । बुनकरों के पास कते सूत के ढेर के ढेर लग गए, जबकि कपड़े की मांग उत्तरोत्तर बढ़ रही थी ।

एडमंड कार्टराइट नामक एक पादरी, जो यंत्र-विज्ञान का शौक के तौर पर अध्ययन कर रहे थे, बुनकरों की समस्या में दिलचस्पी लेने लगे । सारी प्रक्रिया को निकट से देखने पर आहिस्ता-आहिस्ता उन्हें एक मशीन की सम्भावना सूझी जो कातने और बुनने के दोनों काम साथ-साथ कर सकती थी ।

उन्होंने अपने आविष्कार के सम्बन्ध में कागज पर हिसाब लगाया और एक लोहार को उस मशीन के भाग बनाने को कहा । कुछ ही समय में एक उद्योगपति ने मैचेस्टर की एक फैक्टरी में कार्टराइट की चार सौ मशीनें लगवा दीं । ये सब मशीनें वाट-इंजन से चलती थीं । सारा काम इतना तेज अपने-आप होता था कि कातनेवालों और बुनकरों के कौशल की कोई जरूरत ही न पड़ती थी । 1820 तक आखिरी बुनकर ने अपना घर त्यागा और कारखाने में नौकरी के लिए प्रार्थना की । घरेलू उद्योगों का लोप हो गया या फिर वे कारखानों में बदल गए, जहां मजदूर मशीनों की देखभाल करते थे और उन्हें चलाते थे । कपड़ा-उद्योग दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करने लगा ।

निरंतर कताई

सैमुअल स्लाटर जब 1790 में अमरीका जा बसा तो उसने सूती कपड़े के एक कारखाने का सारा मशीनी काम कण्ठस्थ कर लिया, जिससे वह उस कानून से बच निकला जिसके द्वारा इंग्लैण्ड से मशीनों का मंगवाना निषिद्ध था । रोड द्वीप के पाटुकेट नामक स्थान में स्लाटर का नया कारखाना इतनी तेजी से चलने लगा कि दक्षिण में कपास के खेत इतनी तेजी से रुई नहीं दे सकते थे ।

कपास के खेत के हर मजदूर को तीन पीण्ड कपास में से बिनीले निकालने में कम से कम दस घंटे लगाने पड़ते थे । एली व्हिट्नी कपास के खेतों में मालिकों और स्लाटर कारखाने की सहायता को पहुंचा । उसने बिनीले निकालने की अपनी प्रसिद्ध मशीन का आविष्कार किया ।

इस यंत्र में धातु के दांत लगे थे और बीच की दरार इतनी संकीर्ण थी कि बिनीले रुई से अलग हो जाते । रुई को एक-दूसरे की ओर घूम रहे नोकदार सिलिण्डरों द्वारा लोहे की एक जाली के बीच से निकाला जाता था । एक घूमनेवाला ब्रुश सिलिण्डरों से लगे बीज साफ करता जाता था ।

इस नये आविष्कार के कारण हर मजदूर एक दिन में कम

से कम 50 पौण्ड रुई साफ करके रख देता । तब स्लाटर के कारखाने में धड़ाधड़ रुई आने लगी, जिसके फलस्वरूप स्लाटर ने एक के बाद एक सूती कारखाने खोलने शुरू कर दिए । इस तरह अमरीका में मशीनी-युग का समारम्भ हुआ । बिनीले निकालने की मशीन के आविष्कार के बाद एक पीढ़ी में रुई का उत्पादन 1,40,000 पौण्ड से बढ़कर 12,50,00,000 पौण्ड हो गया ।

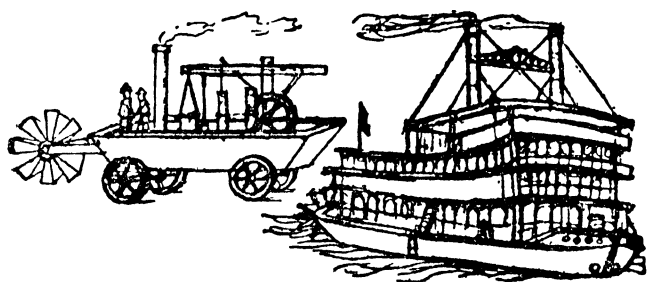
उधर इंग्लैण्ड में वाट के इंजन ने कपड़ा-उद्योग की उन्नति में मुख्य भूमिका अदा की । अब फैक्टरियों को अपने चक्के चलाने के लिए जल-प्रपातों की आवश्यकता नहीं रही थी । 1810 तक वहां 500 से अधिक कारखानों में वाट के इंजन लग चुके थे । दस वर्ष बाद 50 लाख से अधिक तकले घूमने लगे ।

सूती मिलों में नये-नये आविष्कारों से काम लिया जाने लगा । 1801 में जैक्वार्ड ने स्वचालित करघे का आविष्कार किया ।

बाद में, जब करघे को बिना बंद किए तागे की रील डाली जाने लगी, तब करघा और भी अधिक स्वचालित बन गया । रील डालने का काम अपने-आप तागा देनेवाली नाल के द्वारा होने लगा ।

फिर एक विशेष प्रकार का यंत्र जोड़ा गया जो ताने के तारों के दोनों सिरों को काट फेंकता था । इन और अन्य स्वचालित यंत्रों की सहायता से एक चालक शीघ्र ही 16 करघों की देख-भाल करने के योग्य हो गया था । 1857 तक कतार्ई की मशीन में कोई 800 आविष्कार सम्मिलित थे और एक चालक 80 करघों से भी अधिक को चला सकता था । बुननेवाली 5 लाख मशीनें जितना कपड़ा तैयार कर सकती थीं, उतना कपड़ा बुनने के लिए कोई 1 करोड़ 70 लाख बुनकरों की आवश्यकता पड़ती ।

आज कृत्रिम धागे अपना स्थान बना रहे हैं । प्लास्टिक के एक पिण्ड को बारीक नलियों में घुसेड़ देने से एक हजार फुट से भी ज्यादा धागा खींचा जा सकता है । इस विधि से इन धागों से गन्धक हटाई जाती है, इन्हें सफेद बनाया जाता है, धोया जाता है और रीलों पर चढ़ाया जाता है । ये सारे काम यान्त्रिक मानव की चंचल उंगलियों द्वारा छः मिनट में अपने-आप हो जाते हैं ।



4. इंजन तथा पांव-चक्के

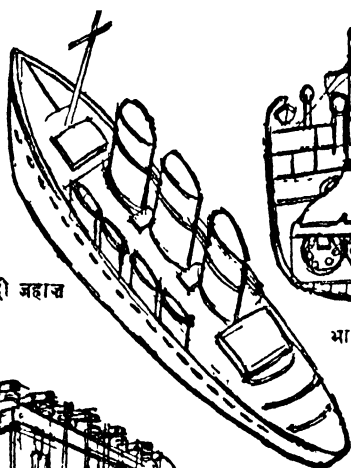
परिवर्तन का दूसरा प्रमाण थीं बिना बादवानों की नावें जो हमारी बड़ी-बड़ी नदियों की छाती पर भक्-भक् करती चलती दिखाई देने लगीं। डिलेवरे, हड्सन और बाद में ओहियो और मिसिसिपी के तटों पर खड़े दर्शक, तेज हवा और पानी के बहाव के विरुद्ध तेजी से भागती नावों को देखकर चकित होते थे।

नई नावें हर रोज अपना काम नियमित समय में ठीक नपी-तुली रफ्तार के अनुसार कर देती थीं। इससे हम लोगों में समय के सम्बन्ध में एक नई जागरूकता आ गई थी। मनुष्य ने, मशीन की समयपरायणता के साथ चलने के लिए अपनी गतिविधियों को तेज करना आरम्भ कर दिया। यह गति-युग का उषाकाल था।

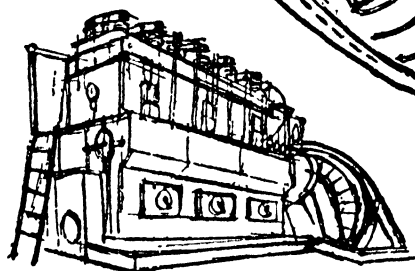
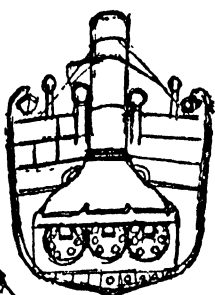
जिस अग्निबोट ने अपने काम से लोगों को चकित कर दिया, उसे फिलाडेल्फिया के एक माल-डिब्बा बनानेवाले आर्लिवर एवान्ज ने तैयार किया था। उसकी दृष्टि एक वाहक गाड़ी जोड़ने पर केन्द्रित थी जो जल-थल दोनों पर चल सके। एक ऐसा इंजन जो दोनों पांव-चक्को व माल-डिब्बों के चक्कों को धकेल सकता हो, उसे घाट-इंजन की अपेक्षा बहुत छोटा होना चाहिए था। लेकिन प्रश्न था, इतने छोटे इंजन से पर्याप्त शक्ति कैसे प्राप्त की जाए?

इस प्रश्न का उत्तर सिद्धान्तों पर विचार करने से ही मिल सकता था। न्युकोमेन का वायुमण्डलीय इंजन, एक सिलिण्डर में

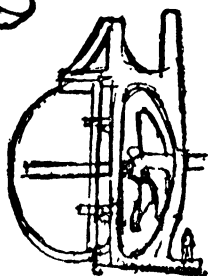
आधुनिक समुद्री जहाज



भाप से चलनेवाले जहाज की आड़ी काट



विशालकाय होजल इंजन



जहाज का रडर और स्क्रू

वैक्यूम उत्पन्न करने के लिए, न कि पिस्टन को आगे धकेलने के लिए, भाप का उपयोग करता था। वाट का इंजन पिस्टन को धकेलने के लिए भाप का उपयोग करता था। एवान्ज का तर्क था कि ताप जितना अधिक होगा उतने ही जोर से भाप पिस्टन के सिरों पर चोट करेगी। एवान्ज का विचार था कि भाप का ताप बढ़ाकर और सिलिण्डर के हर सिरे पर भाप दाखिल करके भाप में और अधिक दबाव लाया जाए। इस ढंग से वह पिस्टन की गति को तीव्र करने और इस तरह उपलब्ध शक्ति को उस सीमा तक बढ़ाने में सफल हुआ जहां इंजन, छोटा होने के बावजूद अधिक शक्ति रखता हो।

तब एवान्ज ने घोषणा की कि वह अपने नये भाप-इंजन को उन पहियों पर रखेगा जो भाप की सहायता से गति में आकर मार्केट स्ट्रीट के बीच में से चलकर डिलेवरे नदी के किनारे तक जाएंगे और वहां भाप से चलनेवाले पैडल इस इंजन को एक अग्निबोट में बदल देंगे। भाप से चलनेवाले एक जल-थलचारी माल-डिब्बे का यह अद्भुत दृश्य देखने के लिए फिलाडेल्फिया के हजारों उत्सुक निवासी घरों से बाहर निकल पड़े। वह इंजन इतना विलक्षण और असुर के समान दिखाई दे रहा था कि लोगों ने उस-पर विश्वास ही नहीं किया। जो घुमां वह उगल रहा था उससे उपयोगिता की अपेक्षा खतरे की अधिक दुर्गन्ध आ रही थी। ऑलिवर एवान्ज ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें अमरीका में एक स्वचालित गाड़ी के लिए प्रथम सर्वाधिकार प्राप्त हुए। उनका यह 21 टन का राक्षस पहली मोटरगाड़ी था।

जॉन स्टीवेन्ज और रॉबर्ट फुल्टन

न्यूजर्सी के होबोकेन नगर की नींव रखनेवाले जॉन स्टीवेन्ज ही थे जिन्होंने अग्निबोट में यात्रा के वास्ते वाट-इंजन को शक्ति-शाली बनाने के लिए एक विधि निकाली। उन्होंने ताप का अधिक स्थान प्राप्त करने के लिए बायलर के अन्दर ही नलियों के समानान्तर पंक्तियों की व्यवस्था की और इस तरह वे दबाव को प्रतिवर्ग इंच में सात पौण्ड से एक सौ पौण्ड तक बढ़ा देने में सफल हुए।

जहां अब होबोकेन नगर बसा है वहां स्टीवेन्ज ने एक सुन्दर महल खड़ा किया और लोग हडसन नदी के पार मैनहटन नगर से सामान ढोने में उच्च दबाव की अग्निबोट का प्रयोग करते उन्हें देखा करते। स्टीवेन्ज के पास अब ऐसा इंजन था जिसे वे मोटर-गाड़ी में बदल सकते थे और उन्होंने अपनी जायदाद की ज़मीन पर एक गोलाकार रेलगाड़ी बनाकर यह प्रमाणित भी कर दिया।

लगभग उसी काल में, पेरिस में रॉबर्ट फुल्टन अपनी नई आविष्कृत पनडुब्बी नेपोलियन को बेच देने की चेष्टा कर रहा था। वहां अमरीकी राजदूत ने अंत में नवयुवक फुल्टन को, सीन नदी

पर एक अग्निबोट बनाने के लिए राजी कर लिया। अपनी अग्निबोट से असंतुष्ट होकर फुल्टन एक नई अग्निबोट का अध्ययन करने स्कॉटलैण्ड गया और नए ज्ञान की शक्ति प्राप्त कर न्यूयार्क लौट आया। उसने अपनी क्लेरमांट नामक अग्निबोट तैयार की जिसने हड्सन नदी पर ख्यातिप्राप्त यात्रा करके अग्निबोट के इतिहास में नाम कमाया।

तीन वर्षों के अन्दर ही अग्निबोटों डिलेवरे, ओहियो और मिसिसिपी जैसी नदियों पर सामान व सवारियां लातीं और ले जाती दिखाई देने लगीं। इस तरह अमरीका पश्चिम की ओर फैलने लगा।

1811 में, मिसिसिपी की पहली अग्निबोट 148 फुट लंबी थी जिसमें बोल्टन और वाट के इंजन लगे थे, तथा जिनमें 34 इंच लम्बा और 10 अश्वबल का सिलिण्डर लगा था।

ज्यों-ज्यों जहाज का पेटा तंग होता गया बॉयलर और इंजन जहाज की मुख्य छत पर रखे जाने लगे। ऐसा तब तक किया जाता रहा जब तक कि अग्निबोट की व्याख्या बेड़े पर इंजन के रूप में नहीं की गई। वास्तव में मिसिसिपी की अग्निबोटें चलते-फिरते महल थे जिनमें भाड़-फानूस, चित्र, आईने और बड़े-बड़े सुन्दर पियानो रखे हुए थे।

उनकी चिमनियों का कलगीनुमा धुआं उस विशालकाय भाप-इंजन की उभर रही शक्ति की घोषणा करता दिखाई दे रहा था, जो कुछ ही समय बाद अन्धमहासागर के पार लोहे के स्टीमर चलाने लगा था।

पहली अग्निबोट के बाद दो दशकों में मिसिसिपी की नदी पर 269 सजे-सजाए सफरी महलों ने चहल-पहल शुरू कर दी थी। दस वर्ष बाद, 729 बोटें नदी पर आती-जाती नजर आने लगीं। कुल मिलाकर, मिसिसिपी के अग्निबोट युग के अन्त तक, जबकि रेलें आ पहुंची थीं, केवल इस एक नदी पर 6,000 अग्निबोटें चल रही थीं और अमरीका की नई सम्पत्ति—कपास और गेहूं ढो रही थीं।



चीनी ढेकी

पवन चक्की

मशीनी ढेकी

5. स्वचालित मिलें और फसल काटने की मशीनें

इन सारे युगों में आटा पीसने की विधि में तब तक बहुत ही कम परिवर्तन देखने में आया जब तक कि अमरीकी आविष्कर्ताओं ने मिलें और फसल काटने की मशीनें चलाने के नये तरीकों को वहीं ढूँढ़ निकाला ।

आटे की प्राचीन मशीनों में दानेदार पत्थर के दो भारी-भरकम पुड़ हुआ करते थे । निचला पुड़ जमा रहता था, जबकि ऊपरवाले पुड़ को दो आदमी, उसीमें गड़ी लकड़ी की मजबूत कील को पकड़कर घुमाते । गेहूं बारीक पिसकर आटे के रूप में निचले पत्थर की झरियों में से बाहर गिरता रहता ।

यह ठीक है कि ये भारी थका देनेवाले गैर दिलचस्प पत्थर बाद में बैलों या रहट द्वारा घुमाए जाने लगे, फिर भी मिलवाले का काम बड़ा कठोर था । जब तक ऑलिवर एवान्ज़ ने 1790 में आटा मिलों में मशीनों से काम लेना शुरू नहीं किया तब तक मिलवाले के सिर का बोझा कम नहीं हुआ । पहली बार उसे तब जाकर सहारा मिला, जब आटा पीसने के काम में भी मशीनें लगाई जाने लगीं । एवान्ज़ ने रहट की शक्ति का उपयोग अन्य सम्बन्धित मशीनें चलाने में भी किया ।

पहले मिल-मालिक को मिल की अटारी से बार-बार आटे और अन्न से भरी बाल्टियां लानी और ले जानी पड़ती थीं । परन्तु बाद में वह इन बाल्टियों को उस खड़े पट्टे से जोड़ देता था जो पानी के चक्र से घूमता था । बाल्टियां जब ऊपर पहुंचतीं तो अपने-आप अन्न उड़ेल देतीं और फिर और अन्न के लिए नीचे आ जातीं ।

पनचक्की में एक लम्बा-सा पेंच भी जमा दिया गया था जो पनचक्की के साथ घूमता था और एक दूसरे आड़े 'कन्वेयर' को मुतवातिर घुमाए रखता था जबकि वह गेहूं को अटारी के एक भाग से दूसरे भाग की ओर ले जाता था । ये दो कन्वेयर मिल के ऊपर और सामने लगातार घूमते रहते थे ।

एक और कन्वेयर उस आटे को खाली करता रहता था जो चक्की के पुड़ों के नीचे बाल्टियों में गिरता रहता था । यह आटा अटारी की छत के फर्श पर गिरता जाता और उन स्वचालित दांतों द्वारा बिखरकर ठण्डा होता जो एक ऐसी नाभि से निकले होते थे जो उसी पन-चक्र से घूम रही होती थी ।

इस तरह अन्न पहले मिल के ऊपर जाता था और लगातार घूम रहे बेलनों द्वारा नीचे आता था । पहले इससे भूसा अलग होता और फिर दूसरी अनावश्यक वस्तुएं, फिरसफाई होती और बाद में दूसरे काम । इतने कामों के बाद बारीक आटा पिसकर बाहर आता ।

ऐसी ही मशीनों द्वारा एक व्यक्ति के लिए यह सम्भव हो सका कि एक तरफ तो वह बोरियों से गेहूं निकाले और फिर कुछ घंटों बाद दूसरी तरफ जाकर बारीक पिसे-पिसाए आटे को बोरियों में बन्द कर दे ।

अमरीका में एवान्ज ने कच्चे माल से लेकर बनी-बनाई वस्तु तक के सभी कामों के लिए पहला स्वचालित कारखाना खोल दिया था । ऑलिवर एवान्ज विज्ञान के उन पिताओं में से माने जाते हैं जिन्होंने विज्ञान की नींव रखी । आटा पीसने के काम पर उनकी पुस्तक जो 1795 में प्रकाशित हुई थी, जगह-जगह पढ़ी



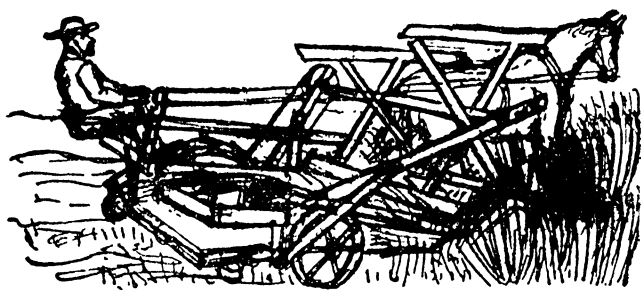
जाती थी और उसकी नकल की जाती थी। जॉर्ज वाशिंगटन चूँकि एक ईमानदार व्यवित थे, इसलिए उन्होंने माउंट वर्नाम नामक स्थान पर बननेवाली एक एवान्ज मिल के लिए आविष्कर्ता को रॉयलटी तक अदा कर दी। जहाँ कहीं गेहूँ उगाया जाता था वहाँ शीघ्र ही स्वचालित मिल खड़ी की जाती जिससे मनुष्यों को पश्चिम की ओर आगे बढ़ने के लिए फुर्सत मिल जाती थी। अमरीका के वे नगर जहाँ मिलें लगी हुई हैं, आज ऑलिवर एवान्ज के स्मारक हैं।

फसल काटने की स्वचालित मशीन

आविष्कारों की कहानी रुकावटों और इनसे जूझकर इन्हें हटा देने के उद्योग की गाथा है। पश्चिम की ओर लोगों के कूच करने से फसल-कटाई के समय मजदूरों की कमी के रूप में पहली बाधा सामने आई। किसान अधिक ज़मीन में गेहूँ बोने से डरता था, क्योंकि फसल की कटाई थोड़े समय में पूरी कर देनी पड़ती थी। चार मिलें बेकार खड़ी थीं, क्योंकि काफी गेहूँ नहीं बोया गया था।

इस अवरोध को 1840 में हटा दिया गया जबकि साइरस मर्कॉमिक की कटाई-मशीन आ पहुँची। उत्साह पाकर किसानों ने खूब गेहूँ बोया, क्योंकि अब उन्हें विश्वास हो गया था कि कटाई शीघ्र हो जाएगी, गेहूँ का अभाव प्रचुरता में बदल गया।

बाद में मर्कॉमिक ने कटाई में तेज़ी लाने और इसे और सरल



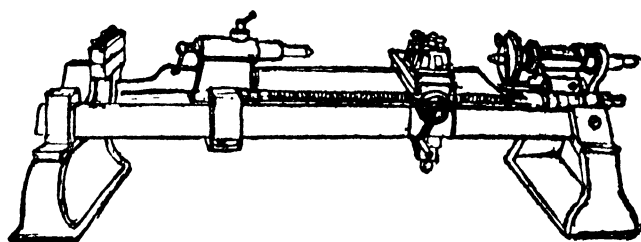
फसल काटने की मशीन (सन् १८६४)

बचाने के लिए अपनी मशीन में और सुधार किया ।

चूँकि हर किसान अब थोड़ी कीमत पर कटाई-मशीन खरीद सकता था, इसलिए जितनी तेज़ी से ये मशीनें बनती थीं उतनी ही तेज़ी से बिक भी जाती थीं । गेहूँ का उत्पादन तिगुने से भी बढ़ गया ।

इतिहास को नई स्फूर्ति प्रदान हुई । अमरीका में जंगल के जंगल साफ कर दिए गए और वहाँ गेहूँ के खेत लहलहाने लगे । नई बस्तियों में कोई मिल-मालिक भी आ पहुँचता तो नदी-नाले के किनारे पर एवान्ज की स्वचालित मिल खड़ी कर देता । ये पुरानी बस्तियाँ सदा मिल के आसपास बस जाया करती थीं और मिलवाले शहर-देहातों की ओर फैलने लगते । जब मर्कॉमिक की कटाई-मशीनों ने अनाज की फसलें काटनी शुरू कर दीं, तो शेष बचा हुआ आटा वापस पूर्वी बन्दरगाहों और यूरोप के देशों को ले जाने के लिए खेतों के नये इलाकों में रेल की पटरियाँ बिछाई जाने लगीं ।

अमरीका ने खेतीबारी की इस उन्नति को कभी हाथ से नहीं जाने दिया । आज भी स्वचालित मशीनें अपने-आप फसल काटती हैं, वहीं खेतों के पास उसे गाहती हैं, बेकार का भूसा उड़ाती हैं और फिर मोतियों की तरह साफ-सुथरे दानों को बोरियों में भरती हैं । यांत्रिक मानव रेगिस्तानों को बागों में और जंगल-बियाबानों को लहलहाते खेतों में बदल रहा है ।



6. मशीन बनानेवाली मशीनें

मशीन को अपने मानवी अनुरूप के सदृश ठीक-ठाक काम कर रहे धातु के जोड़ों, पट्टों और पेशियों की आवश्यकता होती है। विविध प्रकार के मशीनी इस्पाती रूप तैयार किए गए हैं—जैसे, पेंच, गियर, कैम—ताकि यांत्रिक मानव जैसे चाहे अपने अंगों को मोड़ सके और काम में ला सके।

जैसेकि हम वाट के सिलिण्डर के मामले में देख चुके हैं, पहली आवश्यकताओं में से एक यह थी कि इस्पात के ठीक गोल पुर्जे बनाने की विधि क्या होनी चाहिए। अतः खराद सभी मशीनी औजारों का स्रोत बन गया।

इंग्लैण्ड के हेनरी माडस्ले ने अपने जीवन-काल में आधुनिक मशीनी औजारों के सभी आधारभूत रूप तैयार कर लिए थे। उसने पहला खराद बनाया जो सारे का सारा धातु का बना था और जिसमें औजार के लिए सरकनेवाला एक यंत्र लगा था, ताकि काटनेवाले औजार को एक स्थिर स्थिति में कसकर जकड़ा जा सके। जब वह एक क्रैंक को घुमाता था तो एक लंबा पेंच जकड़ने-वाले यंत्र को आहिस्ता-आहिस्ता ऐसी भरी में ले जाता जहां अभीष्ट कटाई हो सकती थी।

खराद ही सभी प्रकार के कामों को करनेवाला एक मशीनी गुलाम है। यह वास्तव में नोकदार टेकों की एक जोड़ी है जिस-

पर वह धातु घूमती है जिससे कोई औजार या वस्तु बनानी होती है। काटनेवाले औजार की तेज छुरी जो यंत्र पर खूब जमा दी जाती है, घूमती हुई धातु के साथ कसकर दबा दी जाती है। इस तरह माइस्ले का खराद, धातु की एक छड़ की लम्बाई के साथ-साथ इतनी सफाई से एक चक्करदार भरी काट सकता था कि हर स्थान के उद्योगपति सभी छोटे पुर्जों—पेंचों, काबलों और ढिबरियों—के स्टैंडर्ड माप पर सहमत हो गए।

जोसेफ ब्रामह ने एक रंदा निकाला जो धातु के टुकड़ों के छिलके उतार देता था। उन्होंने ही सबसे पहले जल-परिचालित प्रेस का उपयोग किया जिससे धातु के टुकड़े को जितना चाहें सिकोड़ सकते थे।

छेद करने, पीसने, दबाने और समतल करनेवाली ये सारी मशीनें अब सही आयामों के रूप के इस प्रकार के कल-पुर्जों के विविध नमूने तैयार करने के योग्य थीं।

कल-पुर्जे जोड़ने का कारखाना

जब धातु को किसी भी वस्तु के रूप के अनुसार ठीक वैसे ही गढ़ा जा सकता था तो कल-पुर्जों को बदल देना सरल हो गया। एली व्हिट्नी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वैसे ही पुर्जों से एक मशीन खड़ी की थी। यह वस्तुएं तैयार करने की एक नई विधि थी। किसी एक स्थान पर पुर्जे बनाए जा सकते थे और इन्हें किसी भी दूसरे स्थान पर जोड़ा जा सकता था। व्हिट्नी तर्क प्रस्तुत करते थे कि इस विधि से वस्तुओं का उत्पादन अधिक संख्या में ज्यादा तेजी के साथ और सस्ते दामों में किया जा सकता है।

अपनी युवावस्था के आरम्भ में व्हिट्नी ने निहाई पर लोहा कूटकर कीलें बनाने के कठिन काम से पेट पाला। एक जैसी शक्ल की कीलें तैयार करना कभी सम्भव न हो सका। कई वर्ष बाद रुई से बिनौले निकालने की मशीन के तैयार होने के पश्चात् जब वे भापपरिचालित हथौड़े को हजारों की संख्या में एक जैसी कीलें बनाते देख रहे थे तो इस बात के कायल हो गए कि मशीनें

मनुष्यों के हाथों का स्थान ले लेंगी ।

वह 1789 का वर्ष था । उन दिनों फ्रांस क्रांति की लपेट में आया हुआ था और अमरीका डर रहा था कि उसका भूतपूर्व मित्र कहीं आक्रमणकारी न बन जाए । अमरीका को समुद्री तट की सुरक्षा के लिए बन्दूकों की आवश्यकता थी । यदि इन बन्दूकों को हाथ से बनाना पड़ता तो सालों लग जाते । कोई ताज्जुब नहीं कि युद्ध-विभाग ब्रिटनी का सुभाव सुनकर प्रसन्न ही हुआ, क्योंकि उसमें यह वचन दिया गया था कि दो साल के भीतर ही 10,000 बन्दूकें, प्रति बन्दूक 13.40 डालर की कम कीमत पर तैयार कर दी जाएंगी । ब्रिटनी को ठेका दे दिया गया और काम चालू करने के लिए कुछ रकम भी दी गई ।

परन्तु, इस युवक आविष्कर्ता को, धातु का सामान बनाने की ऐसी मशीनें तैयार करने के लिए जो पुराने हथौड़े, तेशे और रेती की जगह नये औजारों का निर्माण कर सकें, पर्याप्त मशीनी कौशलवाले व्यक्तियों की खोज में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा । अपने पूर्वज वाट के समान ब्रिटनी को आवश्यक औजार स्वयं बनाने पड़े और कारखानों तथा मशीन की दुकानों से मजदूरी पर लाए गए मजदूरों और कारीगरों को सिखाना पड़ा कि उन औजारों को कैसे इस्तेमाल में लाया जाता है ।

उसके सामने पहला काम यह था कि काटनेवाले औजार को गति देने और उसका निर्देशन करने के लिए मानवी हाथों की जगह कोई यंत्र तैयार किया जाए । मशीन पर काम करनेवाले किसी व्यक्ति के हाथ इतने स्थिर अथवा प्रबल नहीं हो सकते कि वे खुरचनेवाले औजार को घूम रहे लोहे के टुकड़े के साथ एक ही समय में चन्द्र मिनटों से ज्यादा वक्त के लिए चिपकाए रखें । उसके लिए निरन्तर एक जैसे दबाव की आवश्यकता थी । उसने इस समस्या का समाधान 'जिग' (कल के अंगों को नचाने-वाले यंत्र) से किया जो लकड़ी या धातु की एक शकल है जिसके साथ-साथ मशीन का एक औजार नमूना बनाता चलता है ।

बन्दूक के प्रत्येक भाग को चक्के द्वारा काटने से पहले धातु

को पहले से निश्चित स्थिति में कस दिया जाता । इस तरह हर भाग असली जैसा बन जाता । इस प्रकार न केवल आदर्श पुर्जों को ही प्रयोग में लाया जाता था, बल्कि काम की सीटों को भी इस तरह रखा जाता था कि पुर्जों को एक मजदूर के हाथ से दूसरे मजदूर के हाथ में दिया जा सके । फैक्टरी को विभागों को बांट दिया गया । हर विभाग के पास विशिष्ट मशीनें होती थीं जो पट्टे द्वारा उस धुरी के साथ जुड़ी होतीं जो काटनेवाले औजारों को घुमाती थीं ।

अब काम शुरू करने के लिए फैक्टरी तैयार हो गई । बस, इशारे की देर थी कि सब मशीनें एक ही वक्त चलने लग सकती थीं । जब इशारा हुआ तो बन्दूक का हर भाग अलग-अलग बनने लगा ।

अलग-अलग पुर्जों और भागों को इकट्ठा करके इन्हें जोड़ने-वाले कमरे में ले जाने के लिए ही मजदूरों की आवश्यकता थी । उन्हें वहां जोड़ने में भी बहुत ही कम समय लगता था ।

अब बहुत बड़ी संख्या में खूब तेजी के साथ बिलकुल एक जैसा माल तैयार हो सकता था । ऐसा काम किसी भी एक कारीगर के बस में नहीं था ।

पुंजोत्पादन आरम्भ होता है

उस समय अमरीका के आविष्कारक पश्चिम की ओर बढ़ने के आन्दोलन में व्यस्त थे । सीमाओं की रुकावटें हटाई जा रही थीं और रिहायशी मकान बन रहे थे । कुल्हाड़ा तब आविष्कारक और पथ-प्रदर्शन का सबसे ज्यादा प्रिय औजार था । परन्तु, एक कुल्हाड़ा बनवाने के लिए उसे लोहार की प्रायः महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी । एक हत्थी को गढ़ने के लिए कठोर परिश्रम की आवश्यकता होती थी । कुल्हाड़े के एक फाल को तैयार करने और उसकी धार निकालने के लिए एक लम्बा समय लगता था ।

विहट्नी ने बन्दूक बनाने में जो कुछ किया, वही कुछ दूसरे मशीनसाजों ने कुल्हाड़ा बनाने के काम पर लागू किया ।

फैक्टरियां हज़ारों की संख्या में कुल्हाड़े तैयार करने लगीं । मानो रातोंरात कुल्हाड़ों की कमी दूर हो गई ।

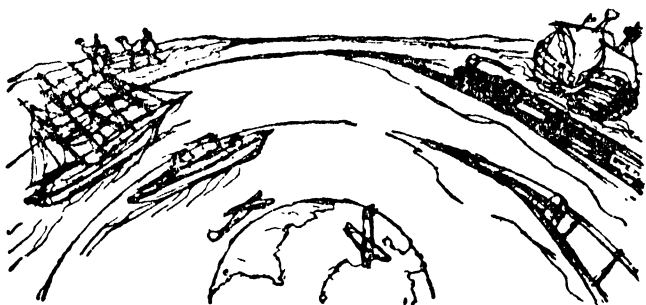
ऐसा लग रहा था जैसे उत्पादन में इस तेज़ी का उत्सव मनाने के लिए फैक्टरियों से घड़ाघड़ घड़ियां बनकर निकलने लगीं । मशीनें एक दिन में पांच हज़ार पुर्जे बना देती थीं और इतनी तेज़ी से उन्हें जोड़ देती थीं कि हर आदमी को सस्ते दामों में घड़ी मिलने लगी ।

जब मशीनें ज्यादा बढ़िया और ज्यादा तेज़ी से सामान बनाने लगीं तो इससे चारों ओर एक उत्तेजना-सी फैलती गई । मशीनों का खूब आविष्कार होने लगा । एलियस होवे ने कपड़ा सीने की मशीन में आमूल परिवर्तन कर दिखाया, जब उसने सुई के सिर के बजाय इसकी नोक में धागे का छेद किया । इस तरह सूई कपड़े में सारी घुसे बिना कपड़े में से धागा ले जा सकती थी । इस ढंग से सीने के काम में सौ गुना तेज़ी आ गई ।

सिगर ने इसे और आगे सुधारा । उसने पैडलवाली मशीन बनाई जिससे चलानेवाले के हाथ कपड़े को इधर-उधर हटाने के लिए मुक्त हो गए । इसमें, होवे की सुई की जगह, जो आड़ी चलती थी, ऊपर-नीचे चलनेवाली सुई लगाई गई थी ।

थोड़े ही समय में सिलाई की मशीन घर से निकलकर कारखाने में चली गई । पुंजोत्पादन के कारण कीमत कम हो गई । अब हर कोई नई पोशाक और नया सूट बनवा सकता था ।

हर नये आविष्कार से पहले की मशीनें और नई मशीनें तैयार कर देतीं । बाज़ार में बने-बनाए माल के ढेर के ढेर लग गए । तब प्रश्न उठा कि कैसे माल को शीघ्रातिशीघ्र मंडियों में पहुंचाया जाए ? यांत्रिक मानव अब चल पड़ा था । उसने इस प्रश्न का उत्तर लोकोमोटिव (प्रचल) इंजन से दिया ।



7. यांत्रिक मानव पहियों पर

धातु के सभी प्रकार के बेडौल आकारों को बस जोड़ देने से अन्त में इंजन जैसी वह उत्कृष्ट मशीनी कृति अस्तित्व में लाई जा सकी जिसे तैयार होने में तीस वर्ष लग गए। जिस समय मशीनें दांतेदार पहियों, नोकदार पेंचों, पहिये के दांतों, 'कैमों', जंजीरों, पट्टों और बियरिंगों को घिस-पिटकर ठीक करना सीख रही थीं, इंग्लैण्ड की एक कोयला खान में मशीनें साफ करने और उन्हें चिकनानेवाले लड़के जार्ज स्टीफेंसन का उदय हो रहा था।

एक युवक शागिर्द की हैसियत से स्टीफेंसन को सप्ताह में एक बार वाट के पम्पिंग इंजन को खोलकर साफ करना पड़ता था। इस प्रकार वह मशीन के पुर्जों के सम्बन्ध में सब कुछ सीख गया। यह सीखने के लिए कि इंजन कैसे बनता है, इससे ज्यादा बेहतर तरीका और कौन-सा हो सकता था ?

एक दिन इतवार को उसके पिता उसे मशीनों के नवीनतम आश्चर्यजनक काम दिखाने के लिए पड़ोस की एक खान में ले गए। रिचर्ड ट्रेवेथिक ने भाप-इंजनवाहक गाड़ी बनाई थी जो दस मील लंबी काठ की पटरी पर पांच मील प्रतिघंटा की रफ्तार से पांच डिब्बों में 10 टन खनिज लोहा और 70 सवारियां खींच सकती थी।

स्टीफेंसन की कल्पना जाग उठी। उसने अपनी खान में

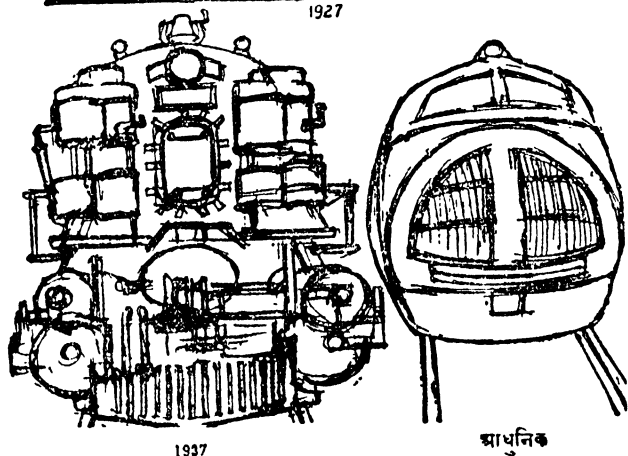
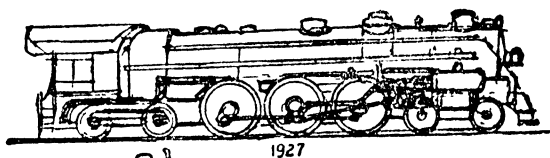
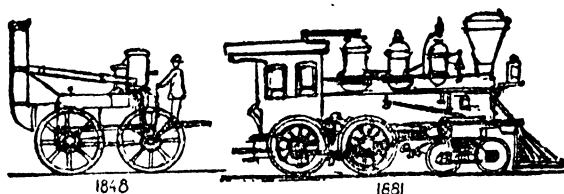
प्रयुक्त घोड़ा-ट्राम की जगह इंजन से चलनेवाली ट्राम बनाने का निश्चय किया ।

खान-मालिक ने उसे काम के बाद प्रयोग करने की अनुमति दे दी । उसने एक बाँयलर बनाया जो पहियों पर चल सकता था । वह ट्राम की पटरी पर एक घंटे में चार मील दौड़ सकता था । परन्तु वह बहुत ज्यादा कोयला खर्च करता था । घोड़े फिर भी सस्ते पड़ते थे ।

ऑलिवर एवान्ज के समान उसने भी अधिक ताप तैयार करने के महत्त्व को समझा । स्टीफेंसन ने बाँयलर की चिमनी में से एक नली द्वारा भाप को निकलने दिया । इससे भाप की गति में तीव्रता आ गई और आग भभक उठी, जिससे इंजन की शक्ति भी बढ़ गई । स्टीफेंसन अभी बहुत कुछ सीख रहा था । उसने नया इंजन बनाया जिसमें और अधिक संख्या में नलियां लगाई गई थीं । तब वह अपनी पहली रेलगाड़ी बनाने में सफल हुआ । परन्तु काठ की उन पटरियों पर जिनके ऊपर केवल लोहे की पट्टी लगी थी, गाड़ी के डिब्बे लड़खड़ाते और हिचकोले खाते थे । अंगारे उगलते इस इंजन ने अपनी 38 मील लम्बी पटरी पर प्रतिघंटा 12 से 15 मील तक रफ्तार प्राप्त कर ली ।

फिर भी इस लौह अश्व के सामने विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ अपना मुंह खोले खड़ी थीं । बाँयलर का फटना इतना आम हो गया था कि कपास के गट्ठों को इंजन के पीछे लगे डिब्बे में डाल दिया जाता था, ताकि यात्रियों को कोई हानि न पहुंचे । तेज हवाएं इंजन को रोक देतीं । नहरों के मालिकों ने बड़े इंजन को प्रयोग में लाने का विरोध किया, क्योंकि उनका दावा था कि देहातों में उनकी गायें और मुर्गे-मुर्गियां इस इंजन से डर जाएंगी ।

तीन महीने तक भाप के इंजन से चलनेवाली गाड़ियों को सार्वजनिक राजमार्ग पर चलाकर देखा गया । इस अरसे के दौरान उन गाड़ियों ने बिना किसी दुर्घटना या देर के 4,200 मील लंबा रास्ता तय किया और 12,761 यात्री ढोए । जनता इस नवीन



प्रारम्भिक से आधुनिक युग तक के रेल-इंजन

यात्रा का खूब आनन्द उठाने लगी। परन्तु बग्घी-मालिकों ने होड़ से डरकर एक कानून पास करवाया जिसके अनुसार, चाहे दिन हो या रात, एक आदमी को हाथ में लालटेन लिए भापगाड़ी के आगे-आगे चलना पड़ता था।

ऐसा लगता था कि भाप-इंजन घोड़े की जगह कभी नहीं ले सकेगा। अमरीका में, जॉन स्टीवेन्ज ने 'नहर में जहाजरानी की अपेक्षा रेलों और भापगाड़ियों के श्रेष्ठ लाभ' विषय पर तर्क-

संगत पुस्तिकाएं लिखीं। परन्तु सरकार ने ऐसी नहर खोदने का निश्चय कर लिया। ऑलिवर एवान्स ने निर्भय होकर भविष्य-वाणी की—“एक भापगाड़ी प्रातः वाशिंगटन से रवाना होगी, यात्री बाल्टीमोर में सुबह का नाश्ता करेंगे, फिलाडेल्फिया में दिन का खाना खाएंगे और न्यूयार्क में उसी दिन रात का खाना खाएंगे।”

परन्तु रेलगाड़ी के सफर को काफी सुरक्षित करने से पहले मार्गदर्शन का बहुत कुछ काम अभी शेष रहता था। जॉन स्टीवेन्स के लड़के ने T आकार की रेल-पटरी और उनपर सिरे से मुड़ी कीलें बनाईं। उसने सिद्ध किया कि पटरी के नीचे दानेदार पत्थरों के पिण्डों की अपेक्षा लकड़ी के तख्ते पटरी को ज्यादा लचीले और आरामदेह बनाते हैं। अधिक तेज गति रेल-पटरी की समस्या पर निर्भर थी। लकड़ी की पटरी ऐंठ जाती थी। भारी वर्षा के कारण वह सरक जाती थी और नीचे बैठ भी जाती थी। इसके स्थान पर लोहे की पटरी काम में लानी आवश्यक थी।

एक आविष्कार ने दूसरे आविष्कारों को आवश्यक बना दिया। भाप के इंजन आने से विशेष डिब्बों की जरूरत पड़ी। लंबी गाड़ियों की मांग थी कि डिब्बों को आपस में जोड़ने का ढंग तेज हो और पटरी को मजबूत किया जाए। लोहे की पटरी के कारण इस्पात की बहुत अधिक मात्रा, स्वचालित ब्लॉक और बटन दबाने से चलनेवाले सिग्नल की आवश्यकता पड़ी।

इन सभी तकनीकी उन्नतियों के फलस्वरूप 31 मील लंबी दुहरे रास्ते की सवारी गाड़ी बनकर तैयार हो गई। यह गाड़ी लिवरपुल और मैनचेस्टर के बीच चलती थी। सर्वोत्तम रेल-इंजन का निर्णय करने के लिए कम्पनी ने एक प्रतियोगिता में 5,000 डालर का पुरस्कार देने की घोषणा की।

उस समय तक स्टीफेंसन ने अपने रेल-इंजन में अपूर्व सुधार कर लिया था। वह व्यर्थ हो रही भाप के 90 प्रतिशत अंश का फिर से उपयोग करने में सफल हो गया था। उसके बॉयलर में

ताप-स्थान 138 फुट तक बढ़ गया था, जो प्रतिवर्ग इंच पर 200 पौण्ड दबाव डालता था। पिस्टन की यात्रा प्रतिमिनट 600 फुट तक बढ़ गई थी। कोयले का खर्च कम होकर एक घंटे में केवल डेढ़ पौण्ड तक रह गया था। स्टीफेंसन का इंजन अपने वजन से तिगुने वजन का माल ढो सकता था और एक घंटे में 24 मील की रफ्तार से चल सकता था। लिवरपुल और मैन-चेस्टर की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए उसने एक ऐसा रेल-इंजन बनाया जो 59 घोड़ों का काम कर सकता था और 38 डिब्बों में 450 यात्री ले जा सकता था। जब उसका 'राकेट' 35 मील प्रति-घंटे की रफ्तार से चलने लगा तो उसने न केवल पुरस्कार ही जीत लिया, बल्कि संसार के सामने सिद्ध कर दिया कि रेलगाड़ी की रफ्तार भी तेज हो सकती है और इसमें यात्रा सुरक्षित भी की जा सकती है।

रेलगाड़ी की धूम

1830 में स्टीफेंसन की यह विजय एक संकट की स्थिति में हुई। इंग्लैण्ड में उद्योग की बड़ी धूम थी। ग्राहकों तक नहरों अथवा घोड़ा-ट्रामों द्वारा माल पहुंचाने की अपेक्षा कोई और तेज साधन आवश्यक था, क्योंकि नहरें सदियों में जम जाती थीं और घोड़ा-ट्रामें वैसे भी बड़ी अनुपयोगी सिद्ध हो चुकी थीं।

स्टीफेंसन की आश्चर्यजनक सफलता ने मार्ग से अवरोधों को परे हटाकर रेलगाड़ी-युग का सूत्रपात किया। दस वर्षों के अन्दर-अन्दर, इंग्लैण्ड के सारे मुख्य शहर रेल द्वारा मिला दिए गए।

उसी समय, महासागर के पार, अमरीका रेलगाड़ी की तीव्र विभिन्न सड़कों के निर्माण में जुटा था। वे तीनों सड़कें पश्चिम की ओर जाती थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में न्यूयार्क सेंट्रल रेल बफफेलो तक पहुंच गई, पेंसिल्वेनिया रेल पिट्सबर्ग तक चली गई, और बाल्टिमोर तथा ओहियो की रेलें ओहियो घाटी को चीरती चली गईं।

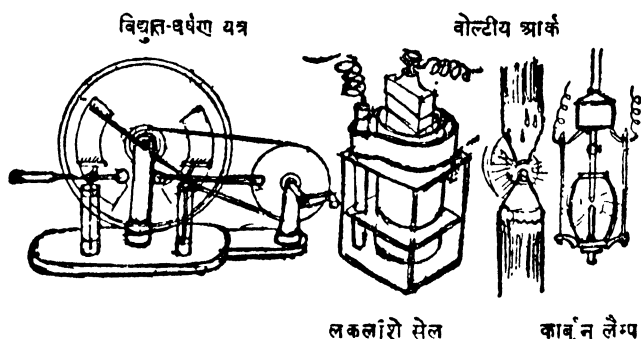
यांत्रिक मानव उत्तम अश्व अथवा डाक-बग्घी से दस गुना तेज यात्रा करने लगा । दूर बसे स्थानों को जाने में पहले जितना समय लगा करता था उसका केवल एक अंश अब लगने लगा । अमरीका के भीतरी भागों में रेलों ने शहर बसा दिए । मांस को डिब्बों में बन्द करने के लिए शिकागो उभरा, इस्पात मिलों का पिट्सबर्ग उठ खड़ा हुआ, क्लीवलैण्ड में तेल साफ करने के कारखाने खुल गए ।

भाप-इंजनों की इस बाढ़ से पहले ही सात समुद्रों के बाद-बानों तक ने अपने पंख समेट लिए और उन स्याह-काली अग्नि-बोटों की राह से हट गए जिन्होंने यांत्रिक मानव को संसार के सभी भागों तक पहुंचा दिया ।

जब यूनियन पैसिफिक रेल ने 1869 में अमरीका पार किया तो जॉर्ज फ्रांसिस ट्रेन ने, जिन्होंने इसे उन्नत किया था, गर्व के साथ कहा कि मैं 80 दिनों में सारे संसार का चक्कर लगा सकता हूं । उन्होंने यह यात्रा 78 दिनों में पूरी कर ली । इस साहसिक कार्य से मानव-जाति को नशा-सा चढ़ गया, और जूले वर्न को अपनी असिद्ध कथा लिखने की प्रेरणा मिली ।

जॉर्ज फ्रांसिस ट्रेन उत्तरोत्तर बढ़ती गति का सपना देखते हुए मैडीसन स्क्वायर के उद्यान में बेंच पर बैठे इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि संसार कब उनके विचारों तक पहुंच जाएगा । उन्होंने तीस वर्ष तक प्रतीक्षा की । यांत्रिक मानव के लिए तीव्र गति के साथ एक नई मशीन, अर्थात् मोटरगाड़ी, के बनने में इतना ही लंबा समय लगा ।

इस बीच, यांत्रिक मानव ने शक्ति के एक नये स्रोत—बिजली से काम लेना आरम्भ कर दिया था ।



8. बिजली का प्रवाह

उस समय भी जबकि पहले भाप-इंजन सांस ले रहे थे, वैज्ञानिक जानते थे कि शक्ति का नया स्रोत विद्यमान है। ऊपर आकाश में बिजली का रोबदार प्रदर्शन स्पष्ट दिख रहा था। यह वह शक्ति थी जो कुतुबनुमा की सुई को घुमा देती थी। परन्तु सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात यह थी कि कई वस्तुओं को मात्र आपस में रगड़ने से उनमें बिजली आ जाती थी। देखने में तो बिजली का स्रोत चारों ओर था। परन्तु प्रश्न यह था कि इस छिप-कर बैठी हुई शक्ति को बाहर कैसे लाया जाए ?

सबसे पहले आविष्कारकों ने रगड़नेवाली मशीनों से यत्न किया। गन्धक के एक गोले को एक हथ्थे के साथ जुड़े धुरे पर चढ़ा दिया गया। जब गोले को घुमाया जाता तो वह बराबर रगड़ खाता रहता और इससे सतह में बिजली आ जाती।

हॉलैण्ड में लियेडेन नामक स्थान के वैज्ञानिक पियेटर वान मुशेन ब्रोइक ने एक मरतबान में इस विद्युत्-आवेश को बन्द करने का यत्न किया। उसने एक बर्तन को पानी से भर दिया और उसके ऊपर धातु की एक मूठ-सी जमा दी जिसे उसने एक रगड़-मशीन के घूमते तवे के साथ जोड़ दिया। कुछ देर मशीन चलाने के बाद उसने मूठ को अलग किया और यह देखने के लिए कि कितनी बिजली जमा हो गई है उसने अपनी उंगली मूठ के ऊपर रख दी। उसमें

इतनी अधिक बिजली जमा हो गई थी कि वह फर्श पर जा गिरा । इस तरह बर्तनों में बिजली इकट्ठी करने का ढंग निकाल लिया गया ।

बेंजामिन फ्रैंकलिन के मन में विचार उठा कि हो न हो आकाश में बिजली का कौंधा एक बहुत बड़ी चिनगारी होगा । उन्होंने आंधी और कड़कती बिजली के दौरान अपने प्रसिद्ध 'पतंग प्रयोग' द्वारा इसका परीक्षण किया । जब वे अपना दायां हाथ पतंग की डोर से लटक रही धातु की चाबी के निकट लाए तो एक चिनगारी चाबी से कूदकर उनकी उंगली की ओर लपकी । यह वैसी ही चिनगारी थी जो रगड़-मशीन से उठती थी । इसने सिद्ध कर दिया कि कौंधा बिजली ही है ।

फ्रैंकलिन ने बिजली को प्रयोगशाला से निकालकर आम आदमी तक पहुंचाया । उन्होंने दो प्रकार की बिजली तैयार की—नेगेटिव तथा पॉजिटिव, आकर्षित करनेवाली और परे धकेलनेवाली बिजली । उन्हें लगा कि वह शक्ति बिजली तथा चुम्बकत्व दोनों में विद्यमान है । तब उन्होंने लिखा—“विद्युत्-पदार्थ में अत्यन्त सूक्ष्म कण होते हैं क्योंकि यह साधारण पदार्थ में प्रवेश कर सकता है ।”

बिजली के लिये डेन बर्तन में फ्रैंकलिन के 'सूक्ष्म कण' संहारकारी शक्ति भी पा सकते थे । एक व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते फ्रैंकलिन ने एक बार एक 14 पौण्ड के तुर्की मुर्ग को बिजली से मारने के लिए बिजली का बर्तन इस्तेमाल किया । तब उन्होंने जाना कि यदि बिजली की कड़क उनकी पतंग से जाकर टकरा जाती तो उन्हें जीवन से ही हाथ धोना पड़ता ।

बिजली की बैटरी

लिये डेन के बिजली के बर्तन एक ऐसा गोरखधंधा थे जो किसीकी समझ में नहीं आते थे । अभी तक बिजली का अनवरत प्रवाह प्राप्त करने के लिए कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था ।

एक नया ढंग निकालना आवश्यक था । इस आंधी गली में से निकलने का मार्ग सबसे पहले इटली के एक शरीर रचना-शास्त्री ने

प्रशस्त किया। 1786 में लुइजि गाल्वानी ने खोज की कि लिये-डेन बर्तन की बिजली से मेढक की टांगों की जोड़ी को फड़काया जा सकता है। परन्तु उन्होंने जब उन टांगों को लोहे के जंगले से जुड़ी तांबे की एक खूटी पर लटकाया तो टांगें फिर सिकुड़ गईं। गाल्वानी विश्वस्त हो गए कि बिजली या तो मेढक की टांगों से उत्पन्न होती है या फिर दो विचित्र धातुओं से। फिर पता लगाना चाहिए कि बिजली कहां से आती है।

इटली के एक दूसरे प्राध्यापक अलेस्सैण्ड्रो वोल्टा को संदेह हुआ कि बिजली दो भिन्न धातुओं से निकलती है। उसने जस्ते और तांबे की प्लेटों की बनी एक बैटरी से बिजली का निरंतर प्रवाह प्राप्त करके अपना विचार सिद्ध कर दिया। पहली बार विद्युत्-शक्ति को एक स्थान पर जमे जेलखाने से मुक्त कर दिया गया। इसके प्रवाह को, अब जिधर-जिधर तार जाता था, उसके साथ-साथ बहाया जा सकता था। बिजली के पांव से बेड़ियां अब काट दी गई थीं।

लंदन की रॉयल सोसाइटी के प्रधान सर हम्फ्री डेवी ने 2,000 तक रासानिक बैटरी सेलों का प्रयोग किया। उन्होंने लकड़ी के कोयले के दो टुकड़ों को बाहर निकल रहे तारों की दोनों कोरों के साथ जोड़ दिया। जब उन्होंने कार्बन के टुकड़ों अर्थात् कोयलों को छुआ और उन्हें धीरे-धीरे अलग किया तो दोनों कोयलों के कोनों से प्रकाश का निरंतर प्रवाह चमक उठा। वह ऐसा प्रकाश था जो सूर्य के प्रकाश से भी अधिक चमकीला मालूम होता था और जिसे मनुष्य ने अभी तक नहीं पैदा किया था।

अब बिजली के तारों में पहले स्नायुओं का दर्शन हुआ और यांत्रिक मानव ने विद्युत्-चक्षु खोला।

करेंट और मैग्नेट

अब जबकि बैटरी से बिजली की अनवरत करेंट मिलने लगी, तो प्रत्येक विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला ने बिजली का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। कोपेनहेगेन में, हान्स क्रिश्चियन ओएर-

स्टेड नामक एक प्राध्यापक ने अपनी जिज्ञासा से प्रेरित होकर एक कुतुबनुमा को वोल्टा बैटरी से जुड़े एक तार के पास रख दिया । उसने जान लिया कि कुतुबनुमा की सुई तभी अपने स्थान से हट जाती है जब कुतुबनुमा को एक विशेष स्थिति में रखा जाता है । यानी जब सुई शक्ति की अदृश्य रेखाओं को पार कर जाती हो ।

जब ओएरस्टेड ने अपनी खोज की घोषणा की तो करंटों और चुम्बकों पर दिन-रात प्रयोग किए जाने लगे । चन्द ही दिनों में, फ्रांस के आंद्रे एम्पीयर ने कई आविष्कार किए । उसने पता लगाया कि अगर तार को लपेटकर इसका गोल लच्छा बनाया जाए तो एक तार के आसपास चुम्बकीय क्षेत्र को बहुत बढ़ाया जा सकता है । उसने लोहे की एक नरम छड़ को तार के लच्छे में घुसेड़ा और पता लगाया कि वह इस तरह एक शक्तिशाली मैग्नेट तैयार कर सकता है । ज्योंही बिजली की करंट काट दी जाती है तो छड़ में बिजली समाप्त हो जाती है । जब एक बार संसार को बिजली का यह महत्वपूर्ण मैग्नेट दिखाया गया तो फिर क्या था, बहुत-सी वस्तुएं अस्तित्व में आने लगीं । बिजली की करंट की एक इकाई को बिजली के मैग्नेट के इस आविष्कर्ता का नाम दिया गया । अब वह एम्पीयर कहलाने लगी ।

वैज्ञानिक संसार इस मैग्नेट से उत्तेजित हो उठा । कई व्यक्ति इसी विषय में सोचने लगे । कोई सोचता कि क्यों न लोहे के एक टुकड़े के साथ एक छल्ला बांध दिया जाए और बिजली को कभी चला दिया जाए और कभी बन्द कर दिया जाए । इस तरह टिक्-टिक् का एक क्रम तैयार किया जा सकता है । टिक्-टिक् के बीच दूरी को नियमबद्ध किया जा सकता है और एक लम्बे तार द्वारा संदेश भेजे जा सकते हैं । यद्यपि एक व्यावहारिक तार-व्यवस्था की खोज के काम में कई वैज्ञानिक जुटे हुए थे, फिर भी पहले बहुत-से तथ्यों को खोज निकालना अभी शेष था ।

इन नवीन तथ्यों में एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य का पहला प्रदर्शन न्यूयार्क में अलबानी के एक ग्राम-स्कूल के गणित-शास्त्र के अध्यापक जोसेफ हेनरी ने किया । एक मैग्नेट के गिर्द

तार लपेटकर उसने जाना कि तार जितना बारीक होगा, मैग्नेट उतना ही अधिक प्रबल होगा। जब उसने तारकोरेशम में लपेटा और तार के हजारों छल्लों का प्रयोग किया, तो वह एक ऐसा मैग्नेट बनाने में सफल हो गया जो एक टन को ऊपर उठा सकता था।

एक बार उसने मेज़ पर U आकार का बिजली का मैग्नेट और एक बैटरी रखी और उन्हें एक मील लम्बे तार से जोड़ दिया जो उसके कमरे के गिर्द फैला हुआ था। उसने एक छोटा-सा ऐसा छड़-चुम्बक तैयार किया जिसका एक सिरा (पोल) U आकार के चुम्बक और दफ़्तर की घंटी के पास दूसरे सिरे के बीच में लगा था। जब उसने बिजली का बटन दबाया तो छड़ ने चक्कर काटकर घंटी पर चोट की।

परन्तु हेनरी ने व्यावहारिक टेलिग्राफ को बाज़ार में बिकवाने की कोई चेष्टा नहीं की। यह प्रेरणा एक चित्रकार को मिली जिसने अपना जीवन टेलिग्राफ बनाने के कार्य को भेंट कर दिया था।

टेलिग्राफ

उस अमरीकी कलाकार का नाम था, सैमुएल मार्स। यह महान कलाकार 1832 में एक बादबानी नाव 'सैली' में जब घर लौट रहा था तो वह एक यात्री द्वारा मेज़ पर खेले जा रहे एक खेल की ओर आकर्षित हुआ। वह यात्री एक विद्युत्-मैग्नेट के साथ कीलों को खींच-खींचकर एक स्थान पर ला रहा था। कीलें 'टिक्' शब्द के साथ मैग्नेट से जुड़ जाती थीं। मार्स की कल्पना में पूरे विवरण के संग एक तार-प्रणाली जाग उठी।

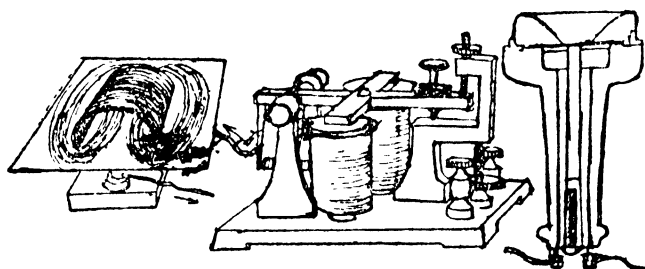
उसने सोच लिया कि बिन्दु तथा डैश या रेखा और दूरी ऐसे तीन चिह्न हैं जिन्हें वर्णमाला के अक्षरों में अनूदित किया जा सकता है। संदेश प्राप्त करनेवाले स्थान पर लोहे के उस टुकड़े के साथ जो मैग्नेट पर चोट करते हुए कागज़ के एक टुकड़े पर बिन्दु तथा रेखा के चिह्न बनाता हो सीसे की एक पेंसिल लटकाई जा सकती है। वही कागज़ घड़ी की यन्त्र-रचना के समान किसी यंत्र से आगे धकेला जाता था। इस प्रकार टेलिग्राफ स्वचालित हो

सकता था ; बड़ी दूरी से उसी समय संदेश लिखे जा सकते थे ।

जब वह जोसेफ हेनरी से मिला जिसने उसे अपने 'तीव्र चुम्बक', जिसके गिर्द बारीक रेशम लिपटी तार लगी थी, और स्थानीय प्रसारण के उस विचार से अवगत कराया जो मर रही करेंट शक्ति को फिर से जीवित कर सकता था तो उसके बाद ही एक व्यावहारिक तार-प्रणाली के निर्माण में उसके प्रयासों को उन्नति मिली ।

पांच वर्ष बाद अमरीकी सरकार ने न्यूयार्क से न्यू आर्लियन्स को संकेत-सूचना वाले 'दृष्टि टेलिग्राफ' के निर्माण की योजना बनाई । मार्स ने सरकार को लिखा कि यह टेलिग्राफ अधिक तेज और अधिक विश्वसनीय होगा, और जैसी भी ऋतु हो उसी समय संदेश भेजे जा सकते हैं ।

अन्त में, सरकार ने वाशिंगटन से बाल्टीमोर तक तार लगाने के लिए मार्स को आर्थिक सहायता दी । परन्तु बीस मील से आगे तार में करेंट इतनी शिथिल पड़ गई कि उससे बिजली का चुम्बक काम ही नहीं करता था । स्थानीय प्रसारण के सम्बन्ध में हेनरी की व्याख्या का स्मरण करते हुए मार्स ने कम दूरी के सर्किटों के एक क्रम का उपयोग किया । प्रसारण की इस विधि से हर चन्द मीलों के बाद करेंट को फिर से तेज किया जाता था, और मार्स 1844 में अपना यह मशहूर संदेश भेजने में सफल हुआ : "ईश्वर ने क्या कर दिखाया है ?"



सोलेनायड

टेलीग्राफ ध्वनित्र

टेलीफोन रिसीवर

विद्युत्-वाणी

तार की सफलता से एलेक्जेंडर ग्राहम बेल और थामस एडी-सन समेत कई युवकों की कल्पना जाग उठी। बेल बहरों-गूंगों के शिक्षक थे और अपना फालतू समय ऐसी तार-प्रणाली के सुधार में लगाते जो कई संदेश उसी तार पर एक ही समय भेज सके।

१८७५ में बेल और उनके सहायक थामस ए० वाट्सन इस 'समस्वर तार' को बनाने में जुटे हुए थे। एक कमरे में वाट्सन ट्रांसमिटर लिए था और साथवाले कमरे में बेल चोंगा (रिसीवर) लिए खड़ा था। ट्रांसमिटर और चोंगे दोनों में, विभिन्न लम्बाई की चुनी हुई 'रीडों' के साथ चुम्बकों का उपयोग किया गया था। ट्रांसमिट करनेवाली एक रीड चिपकाई हुई थी। इसे मुक्त करने की चेष्टा में वाट्सन की उंगलियां दूसरी रीडों को छूती रहती थीं। बेल ने अपने चोंगे द्वारा ध्वनि के विभिन्न स्तरों को सुना। आश्चर्यचकित होकर वह वाट्सन के कमरे की ओर भागा ताकि देखे क्या हो रहा है।

कहा जाता है कि दैवयोग उन्हींके भाग्य में बड़ा होता है जिनके दिमाग उससे लाभ उठाने को उद्यत रहते हैं। उसने हाल ही में जेम्स प्रेसकॉट जौले का सिद्धान्त पढ़ा था कि शक्ति न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट। इसे केवल दूसरे स्थान में बदला जा सकता है। शक्ति कभी नष्ट नहीं होती। यह केवल एक रूप से दूसरे रूप में बदलती है।

अंग्रेज भौतिक-शास्त्री जौले ने इस बात की व्याख्या कर दी थी कि रगड़-मशीन में ताप कैसे बिजली में परिवर्तित होता है ; कैसे बैटरियों में रासायनिक कार्य बिजली में बदल जाता है ; चुम्बकत्व की गतियां तार के लच्छों में कैसे बिजली बना दी जाती हैं। वे सभी मात्र एक गुप्त अस्तित्व की उत्पत्ति हैं। यदि सभी वस्तुओं के मूल में एक अस्तित्व विद्यमान है तब क्यों ध्वनि बिजली में और बिजली ध्वनि में परिवर्तित नहीं की जा सकती ?

बेल ने वह तुरन्त स्वीकार कर लिया जो वाट्सन की रीडों के साथ घटा था। स्पंदित रीडों ने चुम्बकों में विभिन्न स्तर की

चुम्बकीय शक्तियां उत्पन्न कर दीं। इन शक्तियों को चोंगे से आ रही ध्वनि के विभिन्न स्तरों में बदल दिया गया था। उसने शीघ्र ही देख लिया था कि यदि उसका अपूर्ण यंत्र स्पन्दित रीडों की विभिन्न ध्वनियों को दूसरे स्थानों को पहुंचाने के योग्य हो जाता है तो सुधार के बाद हो सकता है। वह मानव-स्वर का ठीक-ठीक पुनरुत्पादन कर सके, उसे बस तार के छल्ले, चुम्बक और धातु के तवे के ठीक जोड़-तोड़ की आवश्यकता थी।

इन्सान के कान की बनावट के जानकार होने के नाते, बेल ने सोच रखा था कि उसके आविष्कार में एक मशीनी कर्ण-पटह, एक भिल्ली और भिल्ली के पीछे एक छोटा-सा कक्ष होना ही चाहिए। उसने किसी पशु की भिल्ली अपने ट्रांसमिटर पर कसकर लगा दी। भिल्ली के बीच में लोहे की पतली, लचीली चद्दर सी लगा दी और इसके पीछे चुम्बक लगा दिया।

ट्रांसमिटर में, ध्वनि-लहरियों ने लोहे की चद्दर में आगे-पीछे की गति ला दी। चूंकि लोहा चुम्बकीय है इसलिए इन गतियों के कारण चद्दर के पीछे पड़े तार के लच्छे में शक्ति की रेखाएं और बिजली की करंट दाखिल होने लगी। चुम्बक के गौण लच्छे ने मुख्य लच्छे की शिथिल ध्वनि को उभार दिया और तार द्वारा करेण्ट को चोंगे में तेजी के साथ प्रवेश करने दिया। इस तरह विद्युत्-शक्ति को श्रोता द्वारा सुने गए शब्दों की ध्वनि-लहरियों में परिवर्तित कर दिया गया।

बेल ने 1875 में अपने आविष्कार का सर्वाधिकार प्राप्त करने के लिए लिख भेजा। उसके 29वें जन्म-दिवस पर उसे यह अधिकार मिल गया। इतिहास में यह सबसे ज्यादा कीमती सर्वाधिकार था।

टेलिफोन (यूनानी शब्द, जिसका अर्थ है 'दूरभाष') पर उसके प्रयोग अभी सम्पूर्ण नहीं हुए थे। भिल्ली के स्पंदन कभी-कभी इतने शिथिल होते कि स्पष्ट शब्दों जैसे नहीं सुने जा सकते थे। जब बेल ने टेलिफोन का प्रदर्शन किया था, उसके एक वर्ष बाद थामस एडिसन समझ गए कि त्रुटि का कारण भिल्ली के पीछे कक्ष में कहीं है। क्योंकि भिल्ली इतनी तीव्रता से स्पन्दित नहीं होती थी

कि चुम्बक की प्रवेश करती करेण्ट को स्पष्ट बिजली के स्पन्दनों में परिवर्तित कर सके ।

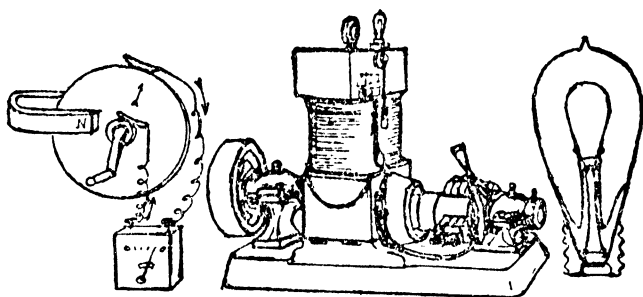
उसने एक विभिन्न प्रकार के पारेषण यन्त्र पर प्रयोग करना आरम्भ कर दिया जिससे करेण्ट को प्रवेश ही नहीं करना पड़ता था । एडिसन ने दो तवों के बीच बारीक पिसा कार्बन भर दिया और हाथी-दांत का एक बटन लगा दिया ताकि यह मुखांग में अवरोध की चद्दर और इन तवों में से एक के साथ सम्पर्क रख सके ।

वायु-स्पन्दनों को, जो अवरोध की भित्तों पर अपना प्रभाव डालते थे, हाथी-दांत के बटन द्वारा तब तक पहुँचाया जाता था और फिर कार्बन के कणों तक । इस तरीके से सूक्ष्म स्पन्दन तक अधिक स्पष्ट हो जाते थे और बिजली के स्पन्दनों में परिवर्तित हो जाते थे । तार के टिक्-टिक् करनेवाले बिन्दु और रेखा टेलिफोन में मानव-वाणी का रूप ले चुके थे ।

लगभग उसी समय थामस एडिसन ने आ रहे मार्स के संकेत समझने के लिए एक यंत्र पर प्रयोग आरम्भ कर दिया ताकि उन संकेतों को अधिक गति के साथ आगे भेजा जा सके । सहसा उसका घड़ी के समान निश्चित गति से चलनेवाला यंत्र दौड़ने लगा और बिन्दु तथा रेखा मानव-वाणी की बड़बड़ाहट के समान सुनाई देने लगी ।

एडिसन को तुरन्त अनुभूति हुई कि मशीन में मानव-वाणी को उतारना सम्भव है । उसने एक घूमते सिलिण्डर को कलई की चद्दर से ढंक लिया था । फिर उसने एक भित्तों के साथ एक सुई जोड़ दी । तब उसने भित्तों में बच्चों का एक गीत गाया । भित्तों के आगे-पीछे हो रहे स्पन्दन सुई में बहने लगे और जब सुई घूमते टीन की चद्दर पर अपने चिह्न अंकित करती तो वे धड़कनें सुई को स्पन्दित करतीं । अपनी आवाज दुबारा सुनने के लिए उसने भित्तों पर एक बड़ा-सा भोंपू लगा दिया । तब एडिसन ने स्वयं अपने गाने की धीमी आवाज सुनी : “मेरी के पास एक छोटा-सा मेमना था !”

यांत्रिक मानव के स्नायु एक पेचीदा रूप लेने लगे, जिनसे उसे न केवल वाणी ही मिली, बल्कि स्मरण-शक्ति भी प्राप्त हुई ।



फैराडे डायनमो

एडिसन डायनमो

एडिसन लैम्प

9. डाइनेमो

शहर के बाजारों में ऐसे खम्भों का जंगल उग आया था जिनके साथ टेलिग्राफ, टेलिफोन और आग के खतरे की सूचना देने के तार लगे थे। बिजली को अब पर लग गए थे। फिर भी, सिवाय थामस एडिसन के किसीके ख्याल में भी यह बात नहीं थी कि यह बिजली एक दिन वामन जैसा डग भरने लगेगी। अब एडिसन ने एक ऐसा कदम उठाया था जिसने गैसों को बिजली के बल्बों और घोड़ा-गाड़ी को ट्राली में बदलकर रख दिया।

अधिकांश विशेषज्ञों का विश्वास था : “विद्युत-करेण्ट का विभाजन किसीके वश में नहीं।” उनका दृढ़ मत था कि बिजली द्वारा प्रकाश के लिए यंत्रों के एक पूरे क्रम की आवश्यकता होगी।

परन्तु, एडिसन के विचार इन विशेषज्ञों के उलट थे। उसका विश्वास था कि लैम्पों को रेल की पटरियों की गांठों की तरह समानान्तर पंक्तियों में ऐसे जोड़ा जा सकता है कि प्रत्येक को अलग से बुझाया और जलाया जा सके। इससे कम शक्ति की करेण्ट की आवश्यकता होती और खर्च भी कम बैठता। एक बल्ब ४० सेण्ट पर बेचा जा सकता था। बल्ब की इतनी कम कीमत और लाखों कमरों को आलोकित करने पर नाममात्र खर्च के फलस्वरूप यह योजना बहुत लाभदायक हो सकती थी।

यह शक्ति थी एडिसन के विचार की, जिसे वह मूर्त रूप देने

पर कृतसंकल्प था, चाहे उसके समय के महान बिजली-इंजीनियरों के सिद्धान्त उसके विरुद्ध थे। एडिसन, उन सपनों को सच करके दिखाने पर तुला हुआ था जो 50 साल पहले माइकेल फेरेडे के डाइनेमो और हम्फ्रे डेवी के आर्क प्रकाश के सम्बन्ध में केवल प्रयोग-शालाओं में देखे जा रहे थे।

माइकेल फेराडे

1821 की बात है। फेराडे ने सिद्ध किया कि बिजली का तार जिसमें करेण्ट मौजूद हो, एक चुम्बक के इर्द-गिर्द निरन्तर घूम सकता है और एक चुम्बक को करेण्टवाले तार के गिर्द घुमाया जा सकता है। पहले दिनों के इन प्रयोगों में से एक विचार ने जन्म लिया जो उसके मन को अगले दस वर्ष तक मथता रहा। विचार यह था कि क्या चुम्बक बिजली उत्पन्न कर सकता है?

जिस चीज़ ने फेरेडे को इस समस्या पर अपना ध्यान केन्द्रित करने पर मजबूर किया वह था उनका यह विश्वास कि चुम्बक अथवा करेण्टवाले तार के इर्द-गिर्द स्थान उस शक्ति की अदृश्य रेखाओं से स्पन्दित हैं जो वृत्तों में बाहर घूमती है। यदि शक्ति की इस रहस्यमयी रेखाओं को एक पहिया घुमाने के लिए प्राप्त किया जा सके तो वे जानते थे कि इन अदृश्य शक्तियों को काम में लाया जा सकता है।

चुम्बक के क्षेत्र को तार के प्रथम गुच्छे से गौण गुच्छे तक, बीच के स्थान द्वारा छलांग लगाने के लिए तैयार करने का विचार साहसपूर्ण होने के साथ-साथ मौलिक भी था। दस वर्ष तक अक्सर उनके प्रयोग निष्फल होते रहे। वे तार के गौण गुच्छे में बिजली की निरन्तर करेण्ट नहीं ला सके। फिर सहसा 17 अक्टूबर, 1831 के तीसरे पहर एक विचार उनके मस्तिष्क में कौंध गया—एक निरन्तर करेण्ट प्राप्त करने के लिए शक्ति की रेखाओं को काटने के उद्देश्य से तार के गुच्छों अथवा चुम्बकों को निरन्तर गति में लाना आवश्यक है।

कुछ ही दिनों में उन्होंने पहला डाइनेमो बनाकर रख दिया

जिससे उन्हें निरन्तर करेण्ट मिल सकता था । इस तरह फेराडे ने मशीनी शक्ति को करेण्ट के प्रवाह में बदल दिया । पहला डाइनेमो अब अस्तित्व में आ गया था ।

फेराडे को इस बात का पता नहीं था कि एक साल पहले अमरीका में जोसेफ हेनरी ने एक मित्र को लिखा था : “मैं अभी कुछ ही दिन पहले एक शक्ति द्वारा जिसे मेरा विश्वास है, इससे पहले यन्त्र-विज्ञान पर कभी लागू नहीं किया गया, अर्थात् चुम्बिक आकर्षण तथा प्रतिकर्षण द्वारा एक छोटी-सी मशीन में गति उत्पन्न करने में सफल हुआ हूँ ।” हेनरी अपना आविष्कार प्रकाशित कराने में सफल नहीं हुए और इस तरह पहला डाइनेमो खोज निकालने का श्रेय अमरीका को न मिल सका ।

अगले दशकों में फेराडे की प्रयोगशाला का डाइनेमो धीरे-धीरे आज के परिचित मोटर-जनरेटर के रूप में बदल दिया गया । 1873 तक वियेना में जेड० टी० ग्रेम ने भाप-इंजन से बिजली की मोटर चलाई और बिजली का एक प्रवाह उत्पन्न कर दिया । तभी जाकर एडिसन ने जान लिया कि एक विशालकाय डाइनेमो को चलाने के लिए भाप-इंजन का उपयोग किया जा सकता है । और इस तरह इमारतों के बिजली के बल्बों में, ज़मीन के नीचे से गए हुए तार द्वारा सीधी करेण्ट पहुंचाई जा सकती है । अब वह बिजली के लैम्प में सुधार करने को तैयार था ।

बिजलीघर

इस समस्या पर एडिसन का आक्रमण नेपोलियन के अभियान की शानदार युद्ध-नीति का रूप धारण कर चुका था । न्यूजर्सी के मेन्लो पार्क में उन्होंने एक इतना शक्तिशाली जनरेटर तैयार किया जो एक इंजन को चलाने के लिए काफी था । तब उन्होंने बिजली के लैम्प पर प्रयोग आरम्भ किया । पहले एक पुरानी किस्म का बिजली का लैम्प मौजूद था । इंग्लैंड में जोज़फ़ स्वान भी इसी लैम्प पर प्रयोग कर रहे थे । परन्तु उनके लैम्प का प्रकाश इतना चुंधियानेवाला था कि कमरे में बैठे आदमी की आंखें दुखने लगती

थीं। एडिसन ने जान लिया कि लैम्प में पतला कार्बन-धागा लगाए बिना काम नहीं बनेगा। 1,200 प्रकार के धागों को उपयोग में लाने के बाद उसने देखा कि वे इतने प्रबल नहीं कि 8 मिनट से अधिक देर तक जल सकें। बस निराशा में ही घबराकर वह अपने बटन के ढीले धागे को ही टटोलने लगा। वहीं उसे प्रेरणा मिली कि सीधे-सादे सूत के धागे को कार्बन में बदल दिया जाए। यह धागा पहले के सभी धागों की अपेक्षा अधिक देर तक जलते रहनेवाला सिद्ध हुआ। वह 40 घण्टे तक जल सकता था। अब एडिसन अपने अगले कदम यानी न्यूयार्क में पर्ल स्ट्रीट पर एक बिजलीघर बनाने के लिए तैयार था।

तब एडिसन को ऐसी व्यावहारिक समस्या पर सोचना पड़ा, जैसे, प्रयुक्त बिजली की मात्रा को मापने के लिए हर इमारत में एक मीटर का होना। इस आधार पर कि डाइनेमो में घूमने की गति करेण्ट की सीधी अनुपाती होती है, उसने एक मीटर तैयार किया। दूसरी समस्याएं भी हल करनी थीं, जैसे सेपटी प्यूज और फिक्सचर आदि।

जो इमारतें गैस को हटाकर बिजली लेने के लिए सहमत हो गई थीं उन्हें पांच महीने तक बल्ब, फिक्सचर और बिजली आदि सभी मुफ्त दी गईं। सभी चीजें आखिरकार तैयार थीं। बस, बटन दबाने की देर थी।

एडिसन का बल्ब बिजली के नवीन युग का द्योतक बना। प्रत्येक पौंड कोयला राख बनकर बिजली में बदल गया। मात्र बटन दबाने से कमरा जगमगा उठता। इस सारे काम का श्रेय तार के लच्छे और चुम्बक को था। इन दोनों ने मिलकर जादू कर दिखाया था।

जनरल इलेक्ट्रिक के विलियम कूलिज और इविंग लैंगमुइर ने बिजली के लैम्प में और सुधार किया।

अब जहां कहीं कमरे को प्रकाश की आवश्यकता पड़ती, यांत्रिक मानव अपना दीप्तिमान चक्षु खोल देता।

10. विद्युत्-शक्ति का युग

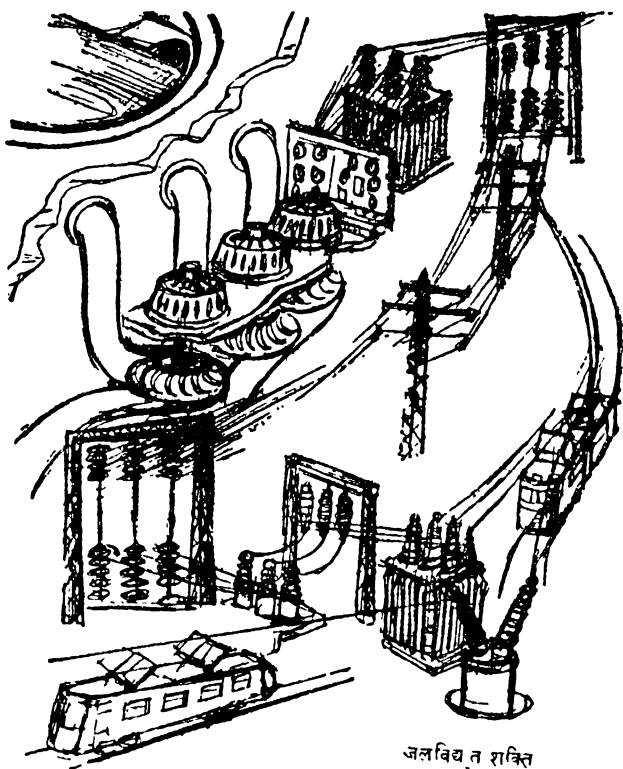
एडिसन के बिजलीघर से नई शक्ति के युग का समारम्भ होता है। भाप-इंजन और डाइनेमो ने कन्धे से कन्धा मिलाकर यांत्रिक मानव की शक्ति को सौ गुना बढ़ा दिया।

अब यह स्पष्ट था कि पहला बिजलीघर अपनी सारी शक्ति को उपयोग में नहीं ला रहा था। बिजली के प्रकाश के लिए ही इस नई शक्ति का केवल समय-समय पर उपयोग किया जाता था। बिजली की शक्ति के विशाल भंडार का उपयोग अन्य कार्यों के लिए भी किया जा सकता था।

विचार उत्पन्न हुआ, मोटरगाड़ियों के पहियों को घुमाने के लिए घोड़ों के स्थान पर इसी शक्ति से क्यों न काम लिया जाए। इसी प्रश्न के उत्तर के रूप में बिजली से चलनेवाली ट्राम सामने आई। शीघ्र ही पत्थर की सड़कों पर 50,000 घोड़ों की टाप की खड़खड़ाहट की जगह बिजली की पहली ट्राली की टनटनाहट सुनाई देने लगी।

जमीन के नीचे से जा रहे केबल-तार जो ट्रालियों को शक्ति देते थे, कुछ ही दिनों बाद घरों और नई बनी रेलों को शक्ति प्रदान करने लगे। बिजली की इस नई व्यवस्था के कारण शहर फैलने शुरू हुए। अब काम करनेवालों को अपने दफ्तरों और कारखानों के पास रहने की आवश्यकता नहीं थी। इसी बीच शहरों में नीची छतवाले मकान सीधे ऊपर उठने लगे, क्योंकि ऊपर जाने के लिए लिफ्टें लग गई थीं जो बिजली से चलती थीं।

बिजली की अधिक से अधिक शक्ति को छोटे-से छोटे साइज के



जलविद्युत शक्ति

बर्तन में बन्द किया जाने लगा । छोटी-छोटी मोटरें इतनी शक्ति-शाली थीं कि उन्हें कारखानों में सीधे मशीनों के साथ जोड़ दिया गया । इसी बिजली की सहायता से घरों में भाड़ू लगाई जाने लगी । आज तो हम अपनी आंखों से देख रहे हैं कि इसी बिजली का इस्तेमाल कपड़े धोने, बजरी मिलाने, बिलोने, रेफ्रिजरेटरो, वायुअनुकूलन यंत्रों आदि को चलाने में होने लगा है । अमरीका में हर साल जो 30 खरब किलोवाट घंटों की बिजली खर्च होती है इसका अधिकांश भाग लाखों बिजली-उत्पादक मोटरों में जाता है ।

प्रत्यावर्तक धारा

यह ठीक है कि बिजली का ज्वार सारे संसार के गिर्द घूमता जा रहा था, फिर भी एडिसन के बिजलीघर में देखा गया कि इसमें एक स्पष्ट त्रुटि विद्यमान है। वह बिजली का प्रकाश जो बिजलीघर के निकट इतना दीप्तिमान और स्थिर था, दो मील दूर मद्धिम पड़कर टिमटिमाने लगा।

बिजली की सीधी धारा उत्पन्न करनेवाले यंत्र 500 वोल्ट से अधिक बिजली नहीं दे सकते थे और इतनी शक्ति बिजलीघर से दूर नहीं भेजी जा सकती थी। परन्तु एक जनरेटर में 500 वोल्ट से अधिक बिजली, जनरेटर से धमाके के साथ निकल रही नीली चिनगारियों के रूप में व्यर्थ जाती थी। यह स्पष्ट हो गया कि एक नये प्रकार का जनरेटर तैयार करना पड़ेगा जो बहुत दूर तक बिजली मुहय्या करने के योग्य हो।

सर्बिया का एक आविष्कर्ता निकोला टेस्ला, जो अमरीका में आने के बाद एडिसन के लिए काम करता था, इस बात का कायल था कि इस समस्या का समाधान प्रत्यावर्तक धारा में है जो अत्यन्त उच्च वोल्टेज पर उत्पन्न की जा सकती है। एडिसन के विचार में यह विधि बहुत खतरनाक थी। टेस्ला ने तर्क किया कि इसे घरों के इस्तेमाल के लिए ट्रांसफार्मर द्वारा 120 वोल्ट तक क्रमशः कम किया जा सकता है।

यह एक तथ्य है कि ट्रांसफार्मर ने, जो 1886 में विकसित हुआ, यह सिद्ध कर दिया कि वह इतना लचीला है कि कोई कल्पना तक नहीं कर सकता।

टेस्ला अपना आविष्कार जार्ज वेस्टिंगहौस के पास ले गया जो अपनी उस नई वायु-ब्रेक के कारण खूब उन्नति कर रहा था और जिसने सड़कों पर यात्रा को सुरक्षित कर दिया था। वेस्टिंगहौस ए० सी० जनरेटर का महत्त्व तुरन्त समझ गया। उसने हिसाब लगाया कि इसका खर्च एडिसन की सीधी धारा का केवल दस प्रतिशत होगा। उच्च वोल्टेज के लिए पतले तार की आवश्यकता थी जिसका अर्थ था बहुत ज्यादा बचत। इसके अति-

रिक्त, चिनगारियों से बिजली नष्ट होने का भी इसमें कोई खतरा नहीं था ।

इस प्रकार की बिजली की सुरक्षा से विश्वस्त होकर वेस्टिंग हाउस ने टेस्ला जनरेटर के लिए दस लाख डालर दिए । आज टेस्ला को आधुनिक विद्युत-शक्ति व्यवस्था के पिता का दर्जा दिया जाता है ।

टरबाइन

ए० सी० जनरेटर तक में एक बाधा दिखाई दी । इसमें गति की बहुत सम्भावना थी । इसलिए, इसे घूमने की इतनी शक्ति की आवश्यकता थी जो भाप-इंजन नहीं दे सकता था । इसी कारण नये जनरेटर और भाप-इंजन का आपस में कोई मेल नहीं था । भाप-इंजन जितना बड़ा होता, घूमने की शक्ति उतनी कम होती । अतः एक नये प्रकार के भाप-इंजन की अनिवार्यता सामने आई । अब एक ऐसे इंजन की आवश्यकता थी जो टेस्ला के तेज चलनेवाले जनरेटरों को चला सकता हो ।

विद्युत-शक्ति में दिखाई दिए इस अवरोध को 1891 में चार्ल्स पार्सन्ज द्वारा निर्मित एक टरबाइन इंजन ने काबू में किया ।

पार्सन्ज ने एक ऐसे इंजन की कल्पना की थी जो लट्टू के ऊपरी भाग की तरह हो । वह भाप से इस तरह चलता हो जैसे हवा हवाई चक्की को चलाती है । बजाय इसके कि भाप पिस्टन को ऊपर और नीचे धकेले, पार्सन्ज ने अपनी भाप का दबाव सीधा घूमते पहिये पर डाल दिया ।

एक बार फिर पहिये ने मशीन के इतिहास में अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी । हम सभी जानते हैं कि चप्पुओं की अपेक्षा घूमनेवाले पंख बेहतर होते हैं, दरी साफ करनेवाला यंत्र भाड़ू से श्रेष्ठ होता है, एक गोलाकार आरा हाथ की आरी से बढ़िया होता है । इस प्रकार, घूमता टरबाइन-इंजन भाप-इंजन की अपेक्षा अधिक कार्यकुशल सिद्ध हुआ ।

पार्सन्ज ने यह बात गांठ बांध ली कि ताप अपना काम तभी

करता है जब उसे ऊंचे ताप-स्तर से निचले ताप-स्तर की ओर छोड़ दिया जाता है। और भाप का ताप जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक वह काम करेगी। परन्तु पिस्टन-इंजन में भाप के ताप को 400 डिग्री से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। परन्तु टरबाइन के लिए भाप का ताप 1,000 डिग्री तक बढ़ाया जा सकता है।

न्यूयार्क में जब 1899 में छोटी सड़कें बनाई गईं तो एडिसन से 10,000 अश्व-बल का एक बिजलीघर बनवाया गया। वह धरती से 40 फुट ऊंचा था और सौ साल तक काम दे सकता था। केवल तीन वर्ष बाद उतनी ही शक्ति एक ऐसे टरबाइन से उत्पन्न की जा सकती थी जिसका आकार भाप-इंजन का दसवां था और उससे बहुत ही कम कोयला खर्च होता था। विद्युत्-उत्पादन में तकनीकी विकास की यह गति एडिसन के युग से कभी नहीं रुकी, और अभी तक आज के परमाणु-युग में भी जारी है।

पन-बिजलीघर

चूँकि हर दस वर्ष में विद्युत्-शक्ति की मांग दुगुनी हो जाती थी, इसलिए टरबाइन जनरेटर ने फिर बांध और भरनों की सहायता ली।

मनुष्य द्वारा निर्मित जलाशय को अब विद्युत्-शक्ति के लिए उपयोग में लाया जा सकता था। नदियों के बांधों का पानी नलों द्वारा एक वर्ग इंच पर 2,000 पौंड दबाव के साथ गिरकर टरबाइन के पंखों को घुमा सकता था और इस तरह बिजली के उत्पादन में सहायता कर सकता था।

पहला विशाल जल-विद्युत्-स्टेशन 1895 में नियागरा प्रपात से बना। वह 20,000 वोल्ट विद्युत्-शक्ति उत्पन्न कर सकता था, जिसे एक ट्रांसफार्मर द्वारा 1,00,100 वोल्ट तक बढ़ा दिया गया था। फिर उसे 6,000 वोल्ट तक छोटे बिजलीघरों में विभाजित करके कम कर दिया गया था और वहां से उसे और भी इतना कम कर दिया गया था कि वह 250 मील की दूरी तक साधारण 120 वोल्ट रह गई थी।

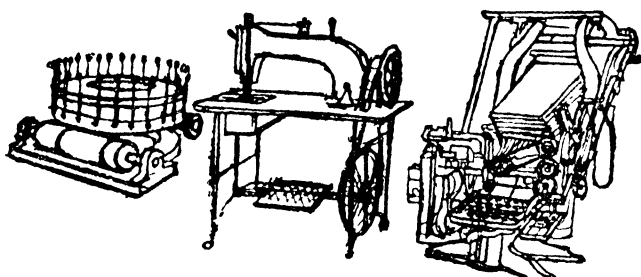
शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि 3,00,000 वोल्ट बिजली को पन-बिजलीघरों से 300 से 600 मील दूर शहरों और देहातों के फार्मों तक पहुंचाया जा सकता है । यदि प्राकृतिक भरने सूख जाते हैं तो इस काम के लिए भाप-टरबाइन तैयार रखे जाते थे ।

इस तरह विद्युत्-शक्ति इतनी सस्ती हो गई कि वह अब भाप-शक्ति का मुकाबला करने के लायक हो गई थी, और कारखानों ने इस सस्ते साधन से काम लेना आरम्भ कर दिया । कारखानों में नई-नई बिजली-उत्पादक मोटरें लग गईं और कारखाने न केवल अधिक साफ-सुथरे दिखने लगे बल्कि उनकी मशीनों में नई गति भी आ गई थी ।

अब बिजली-उत्पादक मोटरें ऐसे इंजनों के संग जोड़ दी गई थीं जो अपनी घूमने की गति को एक मिनट में 400 चक्कर तक बढ़ा सकने के योग्य थे । विभिन्न साइजों की मोटरों में तार लगाकर कम से कम जितनी बिजली की आवश्यकता होती थी, उतनी ही प्राप्त की जा सकती थी । कारखानों ने भाप-शक्ति से मुतवातिर घूम रहे पहले के पट्टों, धुरियों और जंजीरों का खर्च बचा लिया ।

1920 तक यांत्रिक मानव ने अमरीका के लगभग हर गांव और शहर में तारों का अपना जाल बिछा दिया था । शीघ्र ही दुनिया के नये नक्शे बनने लगे क्योंकि घनी आबादी के इलाकों से लोग निकलकर बाहर दूर-दूर तक फैलने लगे । शहरों के बीच जंगल-बियाबान साफ होने लगे और देहातों की आबादी बढ़ने लगी । 10 करोड़ घोड़ों का काम करके बिजली ने अमरीका को एक बौने से दैत्य में बदलने में सहायता दी ।

जिस तरह भाप-इंजन ने जहाजरानी में क्रांति ला दी थी और गैसोलीन इंजन शीघ्र ही परिवहन का कायाकल्प करने-वाला था, ठीक उसी तरह विद्युत्-शक्ति ने अमरीका की रेलों, कारखानों और फार्मों में नया जीवन फूंक दिया था ।



आरम्भिक टाइपराइटर

सिलाई मशीन

लाइनोटाइप

11. आविष्कारों की शृङ्खला

19वीं शताब्दी के मध्य तक मशीन को 'लोह देवदूत' कहा जाता था। इसने अपना जादू चारों ओर—रेलों, इंजनों, कारखानों और लोहे के पुलों तक और उधर दुगुनी हो रही आबादी के शहरों, साफ किए जा रहे दलदली इलाकों, नई खोदी गई नहरों और कटाई की मशीनों की प्रतीक्षा कर रहे फार्मों तक फैला रखा था।

हर वर्ष इस 'लोह देवदूत' से अधिक काम लेने की चेष्टा होने लगी, परन्तु इसकी मांसपेशियों का लोहा बहुत बेलोच सिद्ध हुआ। समुद्री जहाज, पुल और रेल की पटरियां अचानक भारी धक्कों के कारण टूट गईं। यांत्रिक मानव की मांसपेशियों को काम का भार उठाने के लिए ज्यादा प्रबल और लचीला बनाना पड़ा।

भट्ठी का लोहा कमजोर और टूट जानेवाला था, क्योंकि उसमें बहुत अधिक कार्बन था—4 प्रतिशत तक। पिघले लोहे में से खोत निकालने के लिए कोई ढंग सोचना ही पड़ा था। और फिर यह काम वायु की प्रबल धौंक से किया गया। 20 टन ढलवां लोहा अण्डाकार कुठाली में डाल दिया गया। फिर वायु की 20 मिनट तक की धौंक ने लोहे के लाल रंग को सफेद कर दिया, और फिर फीका-नीला। अंत में यह दिख रहा था कि अधिकांश कार्बन नहीं रहा और हवा की ऑक्सीजन से मिलकर कार्बन डाइऑक्साइड के सफेद-गरम विस्फोट के रूप में उड़ गया है।

तब सस्त और लचीला इस्पात बनाने के लिए यथोचित मिश्र-धातु मिला दी गई। इस्पात के उपयोग से पटरियां अधिक बोझ सहन कर सकती थीं। काटने के लिए मशीनी औजारों की धार अधिक तेज की जा सकती थी। दूसरे लोहे को अन्य कामों में इस्ते-माल किया जाने लगा।

धातुओं के मिश्रण से संसार में बहुत अंतर पड़ गया था। अचुम्बकीय धातुओं, जैसे अलुमीनियम, तांबे और मैंगनीज को जब एक जगह इकट्ठा किया जाता है तो वे अजीब ढंग से चुम्बकीय हो जाती हैं। कैंडमियम, सीसा, टिन और कांसा 270 से 320 डिग्री सेंटीग्रेड पर पिघलते हैं। और जब वे मिला दिए जाते हैं तो यह मिश्रण 150 डिग्री पर पिघल जाता है। यह एक ऐसी मिश्रित धातु बन जाती है जो शीशा जोड़ने के काम आती है।

इस्पात में कई दूसरी धातुएं भी मिला दी जाती हैं जिससे इसमें और अधिक स्थिरता, ताप-प्रतिरोध और लचक आ जाती है। ये सारे गुण यांत्रिक मानव की मांसपेशियों में लचक लाने के लिए आवश्यक हैं।

मशीनी औजार

जब एक बार इस्पात के मशीनी औजारों की धार तेज हो गई तो वे और ज्यादा पेचीदा काम करने के योग्य हो गए। ब्लॉचर्ड के खराद से कई प्रकार की बेढंगी वस्तुएं बनने लगीं। उसी घुरी के साथ रगड़ और कटाई के पहिये लगा देने से जिस शक्ल की वस्तु चाहिए बनाई जा सकती थी।

फ्रेंचिक होवे की नई मशीन इस प्रकार के विभिन्न काम कर सकती थी कि आप चाहें तो वस्तु को किसी भी कोण से बिलकुल ठीक काट सकते हैं, और सारा काम अपने-आप हो जाता था। शीघ्र ही यह मशीन कई हाथों का काम करने लगी। विभिन्न उपकरण, घूम रहे धातु के एक गोल ब्लॉक में डाले जाते थे। यह मीनारनुमा खराद बहुत कम समय में छः अलग-अलग खरादों का काम करता था।

19वीं शताब्दी के बाद के समय में मशीनी औजारों का परिवार भली भाँति जम गया था। ये औजार धातु की अनगढ़ छड़ को चीरकर, फाड़कर, कुतरकर और इसमें चाहें तो घेरा बनाकर किसी भी रूप-आकार का पुर्जा बना सकते थे। मशीनें अब वे कोई भी चीज़ बना सकती थीं जिन्हें पहले दस्तकारी के ढंग से बनाया जाता था।

मशीनें क्या-कुछ कर सकती हैं यह विश्वास सबसे पहले गृहयुद्ध के दौरान जाहिर हुआ जबकि अमरीकी सरकार ने मशीनों का आवाहन किया कि वे यूनिजन के सिपाहियों के जूतों का उत्पादन संभालें। मशीनों ने चमड़े के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, तलवे और एड़ियां बनाईं। स्वचालित मशीनों ने अन्दर के तलवों को काटा, तराशा और चिपकाया; ऊपर के चमड़े को तलवों से जोड़ा, एड़ियां बनाईं और इन्हें अपनी जगह पर जमाया।

जो वस्तु हाथ से बनाई जा सकती थी, मशीन ने उसे जल्दी और आम तौर पर बढ़िया बनाया। मशीनी मस्तिष्कों ने लीवरों, गियरों, पेंचों, जोड़ों, कैमों और गरारियों का जोड़-तोड़ करके किसी भी नये आविष्कार की समस्या को हल किया। 19वीं शताब्दी का सबसे बड़ा आविष्कार स्वयं आविष्कर्ताओं की इतनी बड़ी संख्या थी। आविष्कारों को सर्वाधिकार प्रदान करनेवाले कार्यालय में नये विचारों की मानो बाढ़ आ गई थी। 20 लाख ऐसे प्रार्थनापत्र आए हुए थे जो आविष्कारों के अधिकार मांग रहे थे। तकाजा किया जा रहा था कि ये प्रार्थनापत्र शीघ्र निबटाए जाएं।

कार्यालय की रफतार

काम की बढ़ती चहल-पहल का पता विशेषकर कार्यालय में लगा जहाँ सुस्त रफतार के कारण एक समस्या खड़ी हो गई थी और काम में सख्त रुकावट पड़ गई थी। जिस तरह घर में सिलाई की मशीन में सुई को बदलना पड़ा था, ठीक उसी तरह दफ्तर में कलम-दवात की जगह टाइपराइटर का आना अनिवार्य दीख रहा था।

पहले टाइपराइटर में कागज को रोलर में कसना पड़ता था और अक्षर ऐसी डण्डियों पर लगाए होते थे जो गोलाकार वाहक पर लगी स्प्रिंगों से जुड़े थे। डण्डियों को हाथ से घुमाना पड़ता था।

बाद में उसमें सुधार किया गया, जिससे टाइपराइटर खट्-खट चल निकला।

तेज रफ्तार की जरूरत छापेखानों में भी महसूस होने लगी। जब टाइप को हाथ से जमाया जाता और हाथ से चलनेवाले छापेखानों से छपाई का काम होता तो एक घंटे में केवल 300 अखबार छप पाते।

फिर लाइनोटाइप में एक ऑपरेटर एक कीबोर्ड पर बैठकर टाइप का एक ठोस टुकड़ा तैयार कर देता था। ऐसे टुकड़ों को इकट्ठा करके शीघ्र ही पृष्ठ बनाया जा सकता था। टाइप के आयताकार फार्म स्याही के सिलिण्डर के नीचे आगे-पीछे चलते और हर नया कागज छपाई के लिए स्वतः अपनी जगह पर आ जाता। वह कागज एक दूसरे सिलिण्डर द्वारा फार्म के साथ दबाया जाता। इस तरह एक घंटे में 1,000 प्रतियां छपने लगीं।

फिर मुड़ी हुई स्टीरियोटाइप प्लेटें आईं। चूंकि वे गीले पेपरमाशी की बनी होती थीं, उनपर टाइप का निशान अच्छा पड़ता था। पिघली धातु उन चिह्नों पर जम जाती थी। एक पेपरमाशी चौथाई वृत्त बनाता था। इस तरह चार पेपरमाशी टाइप का एक पूरा वृत्त बन जाता था। अब ये टाइप इतनी तेजी से घूमते थे कि एक मिनट में ६,००० अखबार तह होकर बाहर निकलते।

तेज चलने की मनुष्य की आवश्यकता साइकल के आविर्भाव में भली प्रकार व्यक्त होती है, जो सबसे पहले बच्चों के काठ के घोड़े के रूप में आरम्भ हुई।

फिर स्काट्समैन ने पिछले पहिए की धुरी पर क्रैंक लगाए और दो लम्बे लीवरों द्वारा उन्हें चलाया। इस तरह वह बिना जमीन पर पांव रखे उसपर बैठ सकता था। उसने उसे 'वेलॉसिपीड' या पैरगाड़ी का नाम दिया।

दस वर्ष बाद एक जर्मन को एक शानदार विचार सूझा।

उसने लगातार घुमाने के लिए अगले पहिये के साथ पैडल जोड़ दिए । रफ्तार बढ़ाने के लिए पहियों का साइज बढ़ाया जाता रहा और अंत में उन्हें संभालना कठिन हो गया और उनपर चढ़ना खतरे से खाली न रहा । यह 'हडियां तोड़ू' 1885 में जाकर 'सुरक्षा बाइसिकल' बना, जबकि टांग की शक्ति एक जंजीर द्वारा पिछले पहिये तक पहुंचाई गई । इसका वजन हल्का करने के उद्देश्य से इसकी फ्रेम नालियों से बनाई गई ।

बाद में शीघ्र ही यह बात खोज निकाली गई कि धुरी में इस्पात की गोलियां डालने से रगड़ कम हो जाती है और दो अलग-अलग गियर प्रयोग में लाए जा सकते हैं—एक समतल धरती के लिए और दूसरा ढालू पहाड़ियों के लिए । अंत में, जब रबर को गन्धक में पकाकर इसे और मजबूत और लचीला बनाया गया तो रबर के टायर सम्भव हुए । नरम रबर से टायर के अन्दर की ट्यूब बनाई गई, जिसमें हवा बन्द रहती है ।

नरम लचीले रबर के टायरों की सवारी से नये आनन्द की अनुभूति हुई । 1895 तक, अमरीका में सारे राष्ट्र पर साइकल का मानो एक खन्त सवार हो चुका था । 300 कारखाने पूरी क्षमता के साथ इन्हें बनाने में जुट गए, और 10 लाख से अधिक व्यक्तियों के पास अपनी साइकलें हो गई । इस समय यह संख्या 7 करोड़ 50 लाख तक पहुंच चुकी है ।

साइकल महज मनबहलाव की वस्तु से कहीं ज्यादा उपयोगी सिद्ध हुई । अमरीका के सारे देहाती इलाकों में कुकुरमुत्तों की तरह उभर रहे नगरों तक पहुंचने के लिए साइकल ही एक सबसे सस्ता साधन थी । ऐसी स्थिति में किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क में साइकल में गैसोलिन इंजन जोड़ देने का विचार उभर आना अनिवार्य था ।

12. अन्तर्दहन इंजन

यांत्रिक मानव के विकास की ओर हर कदम अनिवार्य आवश्यकता पर आधारित रहा है। भाप-इंजन को इंग्लैण्ड की पानी से लबालब भरी खानों से पानी निकालने के लिए तैयार किया गया। प्रचल इंजन ने खानों व कारखानों के जमा माल के ढेर हटाए। विद्युत्-शक्ति स्टेशनों ने बिजली के नई ईजादों को प्रेरणा दी।

तब भी, जबकि इस्पात की पटरियां और बिजली के तार चारों ओर फैल रहे थे, कई हजार फार्मों और नगरों तक पहुंचने के लिए या तो घोड़े पर सवार होकर जाना पड़ रहा था या पैदल ही। यांत्रिक मानव को एक छोटी-सी मोटरगाड़ी की जरूरत थी जो नगरों के बीच मनुष्यों व सामान को ला और ले जा सकती हो।

जब लोग-बाग बिना घोड़े के साइकल द्वारा यात्रा करने के आदी हो गए तो ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था कि एक छोटा-सा इंजन होना चाहिए जो साइकल या गाड़ी को चला सकता हो, ताकि यांत्रिक मानव पटरियों या घोड़ों पर निर्भर रहे बिना स्वतंत्रता से इधर-उधर घूम-फिर सके।

फ्रांस और जर्मनी में यह खोज की गई कि बिजली और एक पिस्टन गैस-पम्प को अन्तर्दहन इंजन में एक नई विस्फोटक शक्ति उत्पन्न करने के लिए जोड़ा जा सकता है। फिर भी, इसमें कई त्रुटियां निकलीं और कई प्रयोग निष्फल हुए। यह इंजन इतना शोर मचाता था और इससे इतनी दुर्गन्ध निकलती थी कि 1900 ई० तक किसीको भी इसके उज्ज्वल भविष्य में विश्वास नहीं था।

हेनरी फोर्ड

हेनरी फोर्ड के समान कुछ ही व्यक्ति ऐसे दिखाई दे रहे थे जिन्हें इस नये इंजन की सम्भाव्य उपयोगिता की समझ थी। अपनी बाल्यावस्था में ही हेनरी फोर्ड के मन में तीव्र जिज्ञासा थी कि वह यह देखे कि यांत्रिक वस्तुएं कैसे बनाई जाती हैं। इसी जिज्ञासा से प्रेरित होकर वह पास-पड़ोस की खराब घड़ियों तथा घड़ियालों की मुफ्त मरम्मत किया करता था। इस बात को लेकर लोग-बाग उसका मजाक उड़ाया करते थे।

उसके पिता ने, अंत में, उसे किसान बनने पर राजी कर लिया। परन्तु अपने खेत पर भी वह ट्रैक्टरों और हलों के साथ एक भाप का इंजन जोड़ देने के विचार में व्यस्त रहता। कई असफलताओं के बाद उसने सीखा कि ऐसा इंजन तो बहुत भारी सिद्ध होगा और उसे व्यवहार में लाने के लिए बहुत ज्यादा पानी की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरी ओर बिजली का इंजन बहुत महंगा था और बहुत दूर तक साथ नहीं दे सकता था। जब वह 22 वर्ष का था और वापस डिट्राइट में एक मिस्त्री की हैसियत से काम कर रहा था तो उसे ऑटो का एक अर्न्तदहन इंजन मरम्मत के लिए दिया गया। यह इंजन जर्मनी से वहां लाया गया था।

युवक फोर्ड ने बड़े ध्यान से उसका अध्ययन किया। उसने उसका महत्त्व तुरन्त जान लिया। उसमें भाप-इंजन की अपेक्षा ताप अधिक यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित होता था। वह वजन में हल्का, गठा हुआ और शीघ्र चल देनेवाला इंजन था। यह केवल एक पिण्ड 'नैपथा' (उत्तल) से एक गाड़ी को एक मील तक चला सकता था। स्पष्ट था कि परिवहन में इससे कम खर्चा बैठेगा। यह भी स्पष्ट था कि यदि इसमें कुछ सुधार किया जाए तो इसका भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। उसे इस भौड़ी मशीन से प्यार हो गया। उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि वह इससे लगाव रखेगा और इसमें सुधार करेगा।

इसके शीघ्र बाद ही, हेनरी फोर्ड बिना घोड़ों की एक गाड़ी बनाने में जुट गए। अपनी नौकरी के काम के बाद वे अपने घर

के पिछवाड़े में एक छप्पर के नीचे सात वर्ष तक संघर्ष करते रहे । 1896 तक वे अपनी पहली मोटरकार चलाने में सफल हुए । इसमें केवल एक ऊंची सीट थी और स्टियरिंग लीवर, बाइसिकल के पहिये और बाइसिकल की घंटी लगी थी । उन्होंने इसे 200 डालर पर बेच दिया, क्योंकि उन्होंने सोचा कि वे अब एक बढ़िया मॉडल बना सकेंगे ।

प्रथम मॉडल से अंतिम मॉडल तक

मोटरगाड़ी की कहानी हर साल 'बेहतर मॉडल' के निर्माण की कहानी है । ये मॉडल चेन द्वारा चालित पिछली धुरी तथा ठोस और कामचलाऊ पहियोंवाली गाड़ी से लेकर आज की पतली सुन्दर रबर टायरों के साथ हवा-भरे गद्दोंवाली कार तक सुधरते आए हैं ।

आरम्भ के दिनों में फोर्ड को सोचना पड़ा था कि इंजन को एक क्लच द्वारा कैसे जोड़ा जाए और उसे अलग कैसे किया जाए ; कैसे विभिन्न गतियों को प्राप्त करने के लिए गियरों को चुना जाए और बदला जाए ; भटकों के समय कार को संतुलित रखने के लिए सार्वभौमिक जोड़ कहां जमाए जाएं ; मोड़ मुड़ते समय बाहर के पहियों की भिन्न गति प्राप्त करने के लिए विशिष्ट गियरों की व्यवस्था कैसे की जाए ; और किस प्रकार के गियर कार को जल्दी से चलाने, ठहराने और पीछे को चलाने में इस्तेमाल किए जाएं ।

फोर्ड का 'सोचना' ठीक साबित हुआ । इंजन हर वर्ष अधिक कुशल और शक्तिशाली होता गया । बड़ी तेजी से इस इंजन में एक के बाद एक सुधार होता गया ।

बढ़िया वाल्व बनाए गए । ये छोटे-छोटे दरवाजे वायु और गैस के प्रवेश करने और जली गैस को निकालने के लिए खुलते और बन्द होते हैं । कैमों द्वारा इन वाल्वों का खुलना और बन्द होना एक सेकण्ड में 100 से ज्यादा बार होता । 'कैम' खोंचे के आकार का पुर्जा होता है जो वृत्त में घूमने की गति को ऊपर-नीचे की गति में परिवर्तित करता है । वे कैम उस कैम-धुरी के

साथ जोड़ दिए जाते थे जो क्रैंक-धुरी की ठीक आधी रफ्तार पर लगे क्रैंक-धुरी द्वारा घूमते थे ।

कारबोरेटर को सुधारकर एक छिड़कनेवाला यंत्र बनाया गया जो सिलिण्डर के ऊपरी भाग पर वायु और गैसोलिन का मिश्रण ठीक अनुपात में डालता था । जब सिलिण्डर भर जाता तो वाल्व बन्द हो जाता । पिस्टन का ऊपर की ओर भटका गैस को प्रति-वर्ग इंच में 15 पौण्ड से 120 पौण्ड ठोस बना देता । बिजली की चिनगारी इस मिश्रण को भक्-से उड़ा देती । इस विस्फोट से दबाव प्रतिवर्ग इंच में 400 पौण्ड तक बढ़ जाता । इससे ताप भी 4,000 डिग्री हो जाता । तब पानी का आवरण सिलिण्डर की धातु को पिघलने से रोकने के लिए सिलिण्डर के गिर्द ठण्डा पानी घुमाता रहता । पिस्टन के प्रत्येक विस्फोटक धक्के से क्रैंक-धुरी पिछली धुरी को घुमाती ।

एक सिलिण्डर के विस्फोट के बाद शेष सभी सिलिण्डर पहले से निश्चित क्रम के अनुसार विस्फोट करते । इस प्रकार निरन्तर विस्फोटों से तेज गति से इंजन चलने लगता और बराबर शक्ति उत्पन्न करता रहता । इससे क्रैंक-धुरी घूमने लगती और कार एक चक्कर में आधा गज आगे चल जाती ।

यह अंतर्दहन इंजन यांत्रिक मानव की यंत्र-रचना में अत्यंत पेचीदा यंत्रों में से एक यंत्र के रूप में विकसित हुआ । यह इंजन उसी सेकण्ड में दर्जनों काम करके दिखाता । उसी एक सेकण्ड में यह पहले सिलिण्डर में गैस को प्रवेश करने और निकलने देता है, दूसरे सिलिण्डर में ताज़ी हवा और गैसोलिन का मिश्रण तैयार करता है, तीसरे में भाप बनाता है और हवा को घनी करता है, चौथे में जोड़ों में तेल डालकर नरम करते हुए और पीछे से गैसोलिन तथा आगे से पानी पम्प करते हुए विस्फोट करता है । इस इंजन के पम्प करते हृदय की लययुक्त चार गतियां होती हैं—अन्दर प्रवेश करने देना, हवा घनी करना, शक्ति की चोट करना और निकलने देना ।

यांत्रिक मानव के इस स्पंदित हृदय की गति से कदम मिलाने

के लिए बजरी की सड़कें बनाई गईं; जिन्होंने यंत्र-सज्जित जीवित राष्ट्र की अनगिनत नाड़ियों की तरह 40,000 अमरीकी शहरों को आपस में जोड़ दिया। हवा-भरे रबर के टायरों से और बोझ को हवा में उठा देने से ट्रकों में माल लाना और ले जाना सम्भव हो गया। भारी बोझ तेजी से बहुत दूर ढोया जाने लगा। प्रथम महायुद्ध के समय 40 व्यक्तियों के पीछे एक ट्रक था, परन्तु द्वितीय महायुद्ध काल में चार व्यक्तियों के पीछे एक गाड़ी थी।

डीजल इंजन

अन्तर्दहन इंजन द्वारा अधिक से अधिक काम लेने का रहस्य सिलिण्डर में दबाव बढ़ाए जाने में था। जितना अधिक दबाव होता, प्रतिघंटा उतने ही मील अधिक चले जाते, रफ्तार जितनी ही तेज होती, उतनी ही सरलता से पहाड़ियों पर चढ़ा जाता।

परन्तु एक गैसोलिन इंजन में ईंधन का यह दबाव एक सीमा तक ही बढ़ सकता था। वायु तथा गैसोलिन के सम्बन्ध को बनाए रखना अत्यावश्यक था और इसलिए विस्फोट की तीव्रता की भी एक सीमा थी। गैसोलिन इंजन में सुधार मुख्य रूप से तभी लाया जा सकता था जबकि विस्फोटों की संख्या प्रतिसेकण्ड बढ़ जाती।

इस स्थिति का अनुमान पहले से ही लगाते हुए जर्मनी के एक प्रोफेसर ने 50 वर्ष से भी अधिक पहले अपनी कक्षा के सामने इसका सार इस प्रकार प्रस्तुत किया था : “मित्रो, अन्त में हमें यह कहना है...कि विद्यमान प्रधान चालक (गैसोलिन तथा भाप-इंजन) अपेक्षाकृत कम शक्ति उत्पन्न करते हैं।” इन शब्दों से उनके एक विद्यार्थी—रुडोल्फ डीजल—के मस्तिष्क में मानो एक विस्फोट हुआ। उस विद्यार्थी ने एक अधिक शक्तिशाली इंजन तैयार करने के काम में अपना जीवन अर्पित कर रखा था।

डीजल वायु को तब तक ठोस घना करता गया जब वह प्रतिवर्ग इंच में 500 पौण्ड हो गई। इस दबाव से हवा का ताप 1,000 डिग्री तक बढ़ गया। डीजल ने सोचा, चूंकि ईंधन ग्राम तौर पर 450 डिग्री पर जलना शुरू करता है, अतः इसे कड़ाही में

पड़े घी की तरह भड़ककर जलाने के लिए, अत्यन्त घनी की गई वायु के बर्तन में, केवल ईंधन डालने की आवश्यकता पड़ेगी ।

इस प्रकार के इंजन का महत्त्व इसकी सादगी थी । इसे न तो कारबोरेटर की आवश्यकता थी और न ही अन्तर्दहन की व्यवस्था की, न ही चिनगारी प्लगों की और न ही ठण्डा करने की व्यवस्था की । वास्तव में वह ताप जो केवल ठण्डा करने की व्यवस्था द्वारा गैसोलिन इंजन में व्यर्थ जाता था, अब लाभदायक काम कर सकता था ।

डीज़ल छिड़काव के बारीक यंत्र द्वारा ईंधन डालने की विधि की खोज में लगा रहा । ईंधन को जल्दी-जल्दी डालना होता था—अर्थात्, एक मिनट में करीब 13 मील की रफ्तार से प्रति-चर्ग इंच 20,000 पौण्ड का दबाव ।

जब डीज़ल ने अपने पहले इंजन की परीक्षा की तो वह भक्-से उड़ गया जिससे डीज़ल गिरकर बेहोश हो गया । सौभाग्य से वह एक अस्पताल में रहकर स्वस्थ हो गया और उसके मन पर इस घटना का कोई बुरा असर नहीं पड़ा । उसका सिद्धान्त ठीक सिद्ध हुआ । उसने हिसाब लगाया कि शक्तिशाली सिलिण्डरों और अधिक नियमित वाल्वों के साथ उसका दूसरा इंजन बिल्कुल ठीक काम करेगा । वाकई उसने वैसा ही किया ।

उसके इंजन में उत्पन्न 35 प्रतिशत ताप से उपयोगी काम लिए गए, हालांकि गैसोलिन इंजन के 28 प्रतिशत और भाप-इंजन के 12 प्रतिशत ताप से काम लिया जाता था ।

डीज़ल इंजन, छोटे-छोटे कारखानों, मिलों, खानों, पत्थर की खावों, तेल की नालियों, पम्पिंग स्टेशनों, बसों, ट्रकों, रेल-इंजनों और समुद्री जहाजों के लिए शक्ति का स्रोत बन गया । औद्योगिक संसार को बिजली देने के लिए 300 पौण्ड से लेकर 20 लाख पौण्ड के इंजनों में डीज़ल इंजन को आज प्रथम स्थान प्राप्त है ।

13. स्वचालित मानव

जब हेनरी फोर्ड ने अपनी कार को बड़े पैमाने पर तैयार करने का साहसपूर्ण निश्चय किया तो मनुष्य ने अपने-आपको पूरी तरह मशीन के रहम पर पाया। प्रत्येक मनुष्य को विशिष्टीकृत किया गया। पेंचवाला आदमी इसपर काबला नहीं रखता था। जो आदमी काबला रखता था, उसे कसता नहीं था। पुर्जे जोड़ने के कारखाने में प्रत्येक मनुष्य भी मशीन का एक पुर्जा बनकर रह गया।

मशीन अब स्वामी थी। चूंकि मशीन की आंखें नहीं थीं, इसलिए मनुष्य रुकावटें दूर करने के लिए 'देखनेवाला चक्षु' बन गया। चूंकि मशीन हिल-डुल नहीं सकती थी, इसलिए मनुष्य मशीनों में तेल और ग्रीज डालने के लिए इधर-उधर घूमता-फिरता। चूंकि मशीन के हाथ नहीं थे, इसलिए मशीन के लिए मनुष्य सामान खींचता, उठाता और रखता।

मशीन आदेश देती और कारखाने का मजदूर उत्तेजना, थकावट और ऊब की स्थिति में अपने स्वामी के स्पष्ट निर्देश तथा आदेश मानता फिरता।

उत्पादन इस बात पर निर्भर करता था कि मनुष्य कितनी तेजी से मशीन को ठीक-ठाक कर सकता है। पुर्जे जोड़ने के कारखाने में से जब कोई मशीन तैयार होकर निकलती है तो केवल इसका ढांचा खड़ा करने में भी कारखाने के हर मजदूर का कुछ न कुछ काम जुड़ा होता था। उदाहरण के लिए, मैग्नेटो नामक यंत्र कन्वेयर पर चढ़ा रहता है और तब तक प्रत्येक मजदूर अपने-

काम का कुछ न कुछ भाग उस यंत्र में जोड़ता रहता है जब तक कि वह यंत्र 13 मिनट में बनकर तैयार नहीं हो जाता है। जब उस यंत्र के कन्वेयर को आठ इंच ऊपर उठा दिया गया ताकि मजदूरों को बहुत झुकना न पड़े तो इसका नतीजा यह हुआ कि उसके बनने में केवल सात मिनट लगने लगे। कन्वेयर को थोड़ा और तेज करने से यह समय पांच मिनट रह गया।

इन्हीं तरीकों से गाड़ी के नीचे के ढांचे को खड़ा करने का काम केवल 45 स्टेशनों में ही होने लगा और फिर गाड़ी के नीचे का भाग ही नहीं बल्कि सारी मोटरगाड़ी जुड़कर निकलती। 1915 तक एक कार 93 मिनटों में जुड़कर तैयार हो जाती थी। दस वर्ष बाद, जबकि 'टी' मॉडल की 1 करोड़ 16 लाख कारें बनकर बिक चुकी थीं, तो हर 15 सेकण्ड बाद एक नई कार बनकर निकलती थी। सबसे ज्यादा हैरानी की बात यह थी कि कीमत भी 950 डालर से कम होकर 295 डालर रह गई।

यह विचार कि स्वयं मनुष्य को एक यंत्र बनाया जा सकता है, सबसे पहले फ्रेडरिक टेलर के मन में उभरा। वे एक इंजीनियर थे जिन्होंने औजार बनाने की रफ्तार को चौगुना करने के लिए एक नया इस्पात-मिश्रण तैयार किया था। उन्होंने कल्पना की कि स्वयं मनुष्य मशीन के सामने कार्यकुशल बन सकता है यदि वह अपनी फालतू हरकतों को तिलांजलि दे दे। विरामघड़ी, जिसे स्वेच्छा-पूर्वक बन्द कर सकते हैं और चला सकते हैं, की सहायता से उन्होंने तय किया कि एक काम को पूरा करने में विभिन्न श्रमिकों का और विभिन्न हरकतों से कितना समय लगता है।

अन्य इंजीनियरों ने एक मिनट में अधिक से अधिक सम्भव उत्पादन प्राप्त करने के लिए मनुष्य की गतियों का अध्ययन जारी रखा। पुर्जों और सामग्री को आधुनिक मशीन की तरह तेजी के साथ ठीक-ठीक काम देने के लिए कैसे तैयार किया जा सकता है, इस समस्या के सभी प्रकार के अध्ययन जिस निष्कर्ष पर पहुंचे वह चौंका देनेवाला था। वह निष्कर्ष यह था : मनुष्य को एक कार्यकुशल मशीन कभी नहीं बनाया जा सकता।

यंत्र-मानव का विचार

जोर लगाने, ढेर लगाने, खींचने और उठाने जैसा बहुत कठिन शारीरिक श्रम एक मशीन के बाद दूसरी मशीन तक वस्तुओं को पहुंचाने में लगा। इन कामों पर खर्च कारखाने में एक वस्तु के बनकर निकलने तक के सारे खर्च के ८५ प्रतिशत से भी अधिक था।

किसी विशिष्ट मशीन में माल भरने और निकालने में जो समय लगता था, उसीमें अधिक से अधिक बचत की जा सकती थी। यह बात फिर भी स्पष्ट थी कि मनुष्य के हाथों के जरिये ज्यादा तेजी से मशीनों में माल भरा और निकाला नहीं जा सकता। ऐसी मशीनें बनाना आवश्यक था जो मनुष्य से भी अधिक तेजी के साथ सामान को उठाने-रखने का काम कर सकें।

कन्वेयर पट्टे बनाए गए, चलते-फिरते प्लेटफार्म और सभी प्रकार की सर के ऊपर वाली पटरियां बनाई गईं। परन्तु इतनी तेजी के बावजूद मशीनों को बेकार बैठना पड़ता था और सामग्री आने की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।

इंजीनियरों ने ऐसे ट्रक बनाए जो फैली बांहों और छोटे एलिवेटरों से सुसज्जित थे। बिजली के इन ट्रकों के साथ मशीनी हाथ जोड़ दिए गए जिससे वे कारखानों के फर्शों और माल की ढुलाई के प्लेटफार्मों के बीच भाग-भागकर माल ढोते, उतारते और चढ़ाते रहते। फिर चलती-फिरती क्रेन आ गईं। माल तेजी से ढोया जाने लगा।

परन्तु, माल उठाने, चढ़ाने, उतारने, ढोने आदि के कामों में इन्व नये यंत्रों की सहायता भी बिजली की गति से चलनेवाली मशीनों के साथ कदम मिलाने में असफल रही। सबसे भारी रुकावट अलग-अलग मशीनों से तैयार माल ले जाने और इन्हें कच्चा माल पहुंचाने की समस्या के रूप में सामने आई।

यह एक भीषण चुनौती थी। इंजीनियर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि करीब-करीब मानव जैसी मशीन बनानी होगी, जिसमें ऐसी बोधेन्द्रियां हों जो जान जाएं कि वह क्या कर रही है, वह

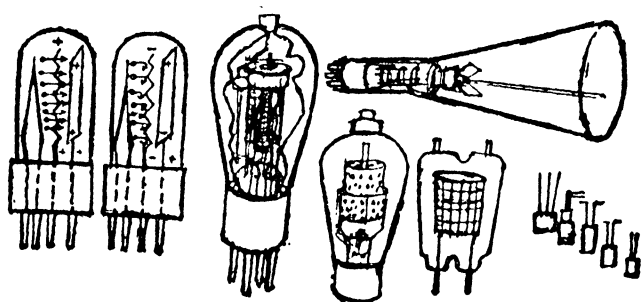
कौन-से निष्कर्ष प्रस्तुत कर रही है। अर्थात्, उसमें बुद्धि हो जो अपनी बोधेन्द्रियों के ज्ञानानुसार अपनी लौह पेशियों के कामों को नियंत्रण में रख सके।

जिस चीज की मांग की जा रही थी वह वही यंत्र-मानव था, जो स्वयं काम के सम्बन्ध में निर्णय कर सके और उसके अनुसार काम कर सके।

प्रश्न था कि क्या मानव अपने-आपका एक यंत्र के रूप में पुनर्निर्माण कर सकता है? इतिहास में ऐसे कई प्रयास मौजूद हैं जो ऐसे यंत्र-मानव के निर्माण के निमित्त किए गए थे। ऐसे पुतले अर्थात् कृत्रिम मानव बनाए जा चुके थे, जिन्हें घड़ी की तरह चाबी दी जाती थी और जो चलते-फिरते और काम करते थे। लियोनार्दो दा विंची ने लुई 12वें के सम्मान में एक विनीत सिंह तैयार किया था। जब लुई 12वें ने मिलान में प्रवेश किया तो यह मशीनी सिंह जीवित पशु के समान नरेश की ओर आगे बढ़ा, ठहर गया, पंजों से अपनी छाती खोली और कुमुदिनी के तीन फूलों के एक गुच्छे की ओर संकेत किया।

फ्रांस में वोकेसो ने पीतल के पंखोंवाली पूरे साइज की एक बतख बनाई थी। यह एक ऐसी अद्भुत मशीन थी जो बतख की तरह कैं-कैं करती थी, इधर-उधर घूमती, पानी में तैरती और दाना चुगती थी।

परन्तु जब इंजीनियरों के सम्मुख एक ऐसी 'विचारशील' मशीन बनाने का प्रश्न आया जिसकी गतिविधि मशीनी औजारों के समान तेज़ी के साथ हज़ारों वस्तुएं एक मिनट में तैयार करके रख दे, तो उन्हें हार माननी पड़ी। ऐसे यंत्र का निर्माण तब तक असम्भव प्रतीत हुआ जब तक कि विद्युत्-विज्ञान या इलेक्ट्रॉनिकी का विकास नहीं हुआ, जिसने 'असम्भव' शब्द ही इंजीनियरिंग के कोश से निकाल दिया।



14. भविष्य की तरंगें

विज्ञान तथा आविष्कार में एक रहस्य के खुलने से दूसरा रहस्य खुल जाता है। महान आविष्कार के क्षणों में एक नया द्वार खुल जाता है। यह बात इतने महत्त्व की नहीं कि इसे खोलता कौन है? अधिक महत्त्व उस नवीन क्षितिज का है जो प्रत्यक्ष रूप में सामने विद्यमान होता है।

फेरेडे ही वे पहले व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने चुम्बक के ऊपर रखे कागज पर लोहे के बिखरे टुकड़ों को रेखाओं से बने एक नमूने में जुड़ते देखा था। परन्तु वे अवश्य ही पहले व्यक्ति थे जिसने यह प्रश्न किया था, “आखिर रेखाओं में ही क्यों?” उनका मानव-ज्ञान उस अदृश्य शक्ति का पता तो नहीं लगा सका था, पर उन्होंने एक साहसपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

विद्युत् तथा चुम्बक ने शून्य आकाश में शक्ति की रेखाएं चला रखी थीं। वे रेखाएं मात्र कल्पित नहीं थीं, बल्कि वे कुछ वास्तविक भौतिक गतियां थीं। फेराडे ने पदार्थ की स्पन्दन-तरंगें देखीं, जिनका बाद में पता चला कि वे विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें तथा शक्ति के फोटॉन कण थे। परन्तु अन्य लोगों को सिवाय शून्य के और कुछ दिखाई नहीं दिया।

फेराडे ने एक नया द्वार खोल दिया था। एक पीढ़ी बाद ब्लर्क मैक्सवेल ने द्वार के पार अंधियारे में साहसपूर्ण कदम बढ़ाया

और गणितशास्त्र के नियमों की सहायता से अपना मार्ग प्रशस्त किया। वे नाटकीय निष्कर्ष पर पहुँचे : विद्युत्-धारा से चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न की जा सकती हैं, जो प्रकाश की गति से चल सकती हैं। उन्होंने कहा कि सबसे अधिक चौंका देनेवाली बात यह है कि मानव-स्वर को तार या केबल के बिना संसार-भर में प्रसारित करने के लिए इन तरंगों को उपयोग में लाना सम्भव है।

पन्द्रह वर्ष बाद जर्मनी के एक युवक भौतिकशास्त्री हेनरिक हर्ट्ज ने मैक्सवेल का सिद्धान्त सिद्ध करने के लिए प्रयोगशाला में प्रयोग किए। इन प्रयोगों द्वारा उसे शून्य में बेतार टेलिग्राफी का प्रमाण मिला। उसने बेतार-संचार में इन तरंगों की उपयोगिता का पता लगाने के लिए खोज शुरू की, परन्तु वह इन तरंगों को दूर भेजने के लिए पर्याप्त शक्ति उत्पन्न नहीं कर सका।

मार्कोनी

जिस ज्ञान से हर्ट्ज वंचित था, वह एक नवयुवक के भाग्य में बँदा था। बीस वर्ष की आयु में, गुग्लिओ मो मार्कोनी ने 1896 में हर्ट्ज द्वारा प्रयुक्त उपकरण से अधिक शक्ति प्राप्त करने की विधि खोज निकाली। उन्होंने उसमें 40 फुट लम्बा एंटेना और धातु की एक प्लेट जोड़ दी जो ज़मीन में गाड़ी गई थी। इन दो वस्तुओं ने एक विशाल कण्डेन्सर का काम किया जिसमें इतनी बिजली जमा हो जाती थी कि उससे हर्ट्ज की तरंगों को दो मील दूर तक भेजा जा सकता था। उसने एक अनुकूलन यंत्र (एक नली में धातु के कण) का उपयोग किया जो केवल एक दिशा में विद्युत्-धारा गुज़ारता था और इस तरह हेडफोन टेलिफोन द्वारा उसका 'पता लगाया' जा सकता था। प्रसारण की अधिक शक्ति पाकर वे तरंगें सैकड़ों मील दूर जा सकती थीं।

युवक आविष्कारक तब पूरी तरह से अपने काम में जुट गया। जहाज़ और तट के बीच बेतार-संचार शीघ्र ही एक वास्तविकता बन गया। फिर अटलाण्टिक के पार विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें भेजने का साहसपूर्ण प्रयोग आरम्भ हुआ। उस समय कोई

भी भौतिक-शास्त्री यह कह सकता था कि ऐसा कर सकना असम्भव ही है, क्योंकि तरंगों वायु द्वारा पृथ्वी पर से बस दूर तो चली जाएंगी परन्तु लौटेंगी नहीं। लेकिन मार्कोनी ऐसे भौतिक-शास्त्री नहीं थे कि इस कथन पर विश्वास कर लेते। न्यूफाउंडलैण्ड में उन्हें अपने जीवन का सबसे अधिक रोमांचक अनुभव हुआ। उन्होंने इंग्लैण्ड के कार्नवाल शहर से सिगनल सुना।

इसका अर्थ था कि किसी प्रकार का आइना मौजूद है जो तरंगों को नीचे धरती पर, फिर वापस प्रतिबिम्बित करता है। यह एक ऐसा संकेत था जिसके कारण बाद में अन्तरिक्ष में प्रतिफलक अयन-मण्डल और रेडार (सर्वदर्शी यन्त्र) का आविष्कार हुआ।

मार्कोनी के बेतार यन्त्र में सुधार हुआ। उन्होंने इसमें सम-स्वरण यंत्र जोड़ा जिससे दूसरे स्टेशनों की रुकावट दूर की जा सकती थी।

उस समय तक कई मस्तिष्क अगला द्वार खोलने में प्रयत्नशील थे। अगला द्वार था, भाषण और संगीत का प्रसारण। यह प्रायः असम्भव-सा लगता था। फिर भी प्रयास किए गए। किसी सर्वथा नवीन वस्तु की आवश्यकता थी। फिर अचानक इस समस्या का समाधान मिल गया।

‘डायोड’ (द्वयग्र)

मार्कोनी की बेतार प्रणाली में सबसे बड़ी त्रुटि इसकी सुनाई देने की शिथिल शक्ति थी। दूर से आए सन्देश काफी स्पष्ट नहीं होते थे। तब मार्कोनी कम्पनी में जे० ए० फ्लेमिंग नामक एक कारीगर को कम्पनी के लन्दन के दफ्तर में अचानक एक दराज में एडिसन के पुराने कार्बन-तन्तु लैम्प दिखाई दिए।

फ्लेमिंग जानता था कि वे एक विशेष प्रकार के लैम्प हैं, जिन्हें एडिसन ने 16 वर्ष पहले, अर्थात् 1883 में लन्दन भेजा था। इन बल्बों में इस्तेमाल के बाद कार्बन जम गई थी जिसके कारण रोशनी मद्धिम पड़ गई थी। इस त्रुटि को दूर करने के लिए एडिसन ने कार्बन-तन्तु के निकट धातु की प्लेट लगाकर

प्रयोग किया था। जब उन्होंने गेल्वेनोमीटर के साथ धातु की प्लेट जोड़ी थी तो वे यह देखकर चकित रह गए थे कि एक छोटी-सी विद्युत्-धारा बह निकली। हालांकि तन्तु और प्लेट के बीच खाली स्थान था।

एडिसन इस विचित्र घटना को नहीं समझ सके थे। जब उनके लैम्प में कार्बन की जगह टंगस्टन का तन्तु लगाया गया तो वह काला मैल गायब हो गया था, और एडिसन इस 'वैज्ञानिक पहेली' के सम्बन्ध में भूल गए। वे दूसरे प्रयोगों में जुट गए। उन्हें इस बात का ख्याल भी नहीं था कि वे उस मार्ग को छोड़े जा रहे हैं जो बाद में इलेक्ट्रॉनिकी के वर्तमान चमत्कारों की ओर ले जाएगा।

फिर भी सोलह वर्ष बाद, बिजली के बारे में और भी बहुत कुछ खोज निकाला गया था और फ्लेमिंग जानता था कि बिजली में अत्यंत सूक्ष्म कण होते हैं जिन्हें 'इलेक्ट्रॉन' कहा जाता है। 'एडिसन सिद्धान्त' था—तन्तु से इलेक्ट्रॉन को इस तरह निकालना जैसे उबलते पानी से भाप निकलती है।

इस विचार से, इन पुराने लैम्पों को अचानक प्राप्त कर फ्लेमिंग खुशी से फूला न समा रहा था। वह सोचने लगा, क्या ही अच्छा हो, यदि ऐसा लैम्प बेतार-तरंगों की प्रत्यावर्ती धारा को निरन्तर सीधी धारा में बदल सके। उसने एक छोटा-सा लैम्प बनाया जिसमें तन्तु के गिर्द धातु का सिलिण्डर लगा था। इसे वह 'डायोड' (द्व्यग्र) कहता था। उसने सिलिण्डर को बैटरी से गरम किया। एक मार्कोनी रिसीवर के हवाई सर्किट में नली डाली और हेडफोन को कान पर लगाया। इसने ठीक-ठीक काम किया।

'डायोड' (त्र्यग्र)

चन्द साल बाद, ली डे फॉरेस्ट ने फ्लेमिंग के 'डायोड' में एक तीसरा इलेक्ट्रोड लगाकर प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। उसने बली के बाहर एक फालतू प्लेट लगाकर प्रयोग किया और फिर बली के अन्दर एक प्लेट लगाई। परन्तु कोई लाभ न हुआ। अंत

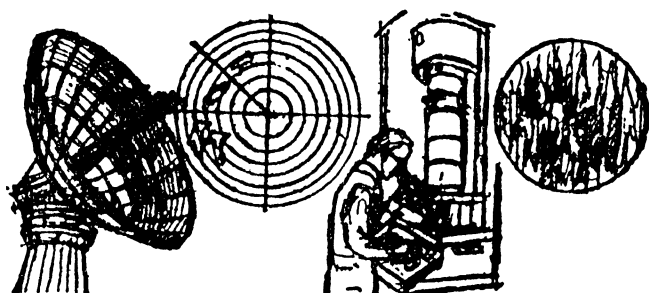
में उसने तन्तु और प्लेट के बीच बारीक तार की एक जाली (ग्रिड) डाल दी। इस बार संकेत पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और तेज आया। उसने 8 फरवरी, 1808 में अपने श्रवण-यन्त्र अथवा 'ट्रायोड' (त्रयग्र) नली के सर्वाधिकार के लिए लिख भेजा।

ऐसी कई नलियों को एक स्थान पर लगा देने से शिथिल संकेत भी तेज होकर सुना जा सकता था।

पहले-पहल तो डे फॉरेस्ट तक को यह एहसास नहीं हुआ कि उसने क्या कुछ बना दिया है। आर्थिक तंगी के कारण उसने अपने आविष्कार के सर्वाधिकार टेलिफोन कम्पनी को 50,000 डालर लेकर बेच दिए। कम्पनी को इस बात का पूरा-पूरा एहसास था कि तीन इलेक्ट्रोड नली, जो हर 50 मील के लिए काम करेगी, डूबती स्वरधारा में नया जीवन डाल देगी जिससे स्वर वही रहेगा चाहे दूरी बढ़ भी जाए।

वास्तव में इस नली में अभी और भी चमत्कार भरा था। पहले महायुद्ध में मेजर इडविन एच० आर्मस्ट्रांग ने एक ऐसे सर्किट के लिए चेष्टा की जिसके जरिये शत्रु के हवाई जहाज द्वारा उत्पन्न की गई विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों की ध्वनि सुनी जा सके। उन तरंगों की फ्रिक्वेन्सी इतनी प्रबल थी जिसे ट्रायोड ट्यूब सहन नहीं कर सकती थी। वह एक ऐसे रिसीवर को खोज निकालने को विवश था जो अपने में प्रबल फ्रिक्वेन्सियों को सहन कर सके और उन फ्रिक्वेन्सियों को छोड़ता हुआ, जिनकी आवश्यकता न हो, उन्हें ग्रहण कर सके जिन्हें सुनने की आवश्यकता हो।

इस तरह आर्मस्ट्रांग ने हमें आज के आधुनिक रेडियो सेट का पहला नमूना भेंट किया। उसकी ही बदौलत आज हम बटन दबाकर जिस स्थान का रेडियो स्टेशन सुनना चाहें सुन सकते हैं।



रेडार का ऐंटीना और पदो

इलेक्ट्रान सुदमदर्शक

15. इलेक्ट्रॉनिक चक्षु

ज्योंही यांत्रिक मानव ने उड़ना सीख लिया, उसे मशीनी इन्द्रियों की आवश्यकता अनुभव हुई। मानवीय इन्द्रियां इतनी तीव्र नहीं थीं कि उनके द्वारा कोई विमान-चालक यह जान सके कि वह कितनी ऊंचाई पर उड़ रहा है, उसकी रफ्तार और स्थिति क्या है और विमान उतारने का ठीक क्षण कौन-सा है।

रेडियो का 'बीप-बीप' का स्वर उसकी सहायता करता है और विशिष्ट आचरण के लिए उसका एक स्वर द्वारा निर्देशन करता है। परन्तु, ज्यों-ज्यों विमानों की रफ्तार तेज होती गई और इनकी संख्या भी बढ़ने लगी, मशीनी इन्द्रियों की मांग भी प्रबल होती गई। विशेषकर ऐसे मशीनी चक्षु की मांग तो बहुत बढ़ गई थी जो धुंध और अंधियारे को चीरकर उस पार देख सके।

1922 में मार्कोनी ने एक ऐसे यंत्र को तैयार कर सकना सम्भव बताया था जो किरणें फेंक सकता हो और उन्हें वापस एक चोंगे में प्रतिबिम्बित कर सकता हो। चन्द साल बाद, कोलम्बिया विश्वविद्यालय के दो विद्यार्थी उच्च फ्रिक्वेन्सी की तरंग को अयन-मंडल में फेंकने और प्रतिध्वनियों का समय निश्चित करने से इस तरंग की ऊंचाई मापने में सफल हुए।

जिन दिनों अयन-मण्डल की खोज जारी थी, प्रयोगकर्ताओं ने देखा कि आसपास उड़ रहे विमान रेडियो-तरंगों में बाधा डालते हैं। इन बाधित तरंगों को रिसीवर पर सुनने से ऐसा लगा कि वे कोई कृत्रिम प्रतिध्वनियां होंगी। इस बात का एक अंग्रेज भौतिक-शास्त्री सर राबर्ट वाट्सन वाट ने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। 1934 में, उच्च फ्रिक्वेन्सी द्वारा एक विमान का पता लगाने और यह जानने का उसने संकल्प कर लिया था कि वह कहां है। तरंगों के वापस ट्रांसमीटर में लौट आने के समय को मापने से उसे यह पता लगा कि ट्रांसमीटर से विमान की दूरी को जानना सम्भव है। और यदि वह उस दिशा का निर्णय करने का ढंग जान सके, जहां से रेडियो-प्रतिध्वनि आ रही थी, तो वह आकाश में विमान के स्थान का निर्णय करने के योग्य हो जाएगा।

प्रथम अनुसन्धानात्मक प्रयासों में तरंगों की शिथिल प्रतिध्वनियों का पता लगाना प्रायः असम्भव था। रेडियो-तरंग एक सेकण्ड के पचास लाखवें भाग में एक मील की यात्रा कर लेता है। समय को एक सेकण्ड के एक करोड़वें भाग में मापना पड़ता था। यह काम कैसे किया जाए ?

कैथोड (ऋणाग्र) किरण-ट्यूब

एक रेडार की प्रतिध्वनि को कैथोड (ऋणाग्र) किरण-ट्यूब द्वारा मापना सम्भव हो गया। यह एक अलग प्रकार की इलेक्ट्रॉनिक ट्यूब थी। इस ट्यूब के भीतरी भाग को फास्फर नामक एक विशेष प्रकार के खनिजों से लीप दिया गया था। जब उच्च फ्रिक्वेन्सी किरणें उनसे टकराती थीं तो भीतरी भाग चमक उठता था। फास्फर बिजली को प्रकाश में बदल देते हैं और स्क्रीन पर एक चमकदार आकृति अंकित कर देते हैं।

रेडार-तरंगें बहुत कुछ साधारण प्रकाश-तरंगों के समान व्यवहार करती हैं। जब वे विमान जैसी किसी ठोस वस्तु से टकराती हैं तो इस तरह पीछे उछल जाती हैं जैसे प्रत्यक्ष प्रकाश-किरणें आईने की सतह से पीछे की ओर प्रतिबिम्बित होती हैं। इस प्रकार

रेडार-तरंगों की एक 'बीम' सर्चलाइट की तरह विमान की ओर फेंकी जा सकती है और वह प्रकाश के बिन्दु के रूप में लौट आती है।

रेडार ट्रांसमीटर से आकाश में किसी वस्तु की ऊंचाई और उसकी दूरी मापने की विधि का पता लगा लिया गया था। इस तरह के मापने की विधि का मुख्य साधन ट्यूब के भीतर आड़ी और खड़ी मोड़नेवाली प्लेटें हैं।

चूँकि रेडार-तरंगें एक माइक्रोसेकंड (एक सेकण्ड का दस लाखवाँ भाग) में एक हजार फुट चलती हैं, इसलिए यदि 'ब्लिप' की ध्वनि पचास की रेखा पर आती है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह प्रतिध्वनि आकाश की किसी वस्तु से टकराकर वापस पचास माइक्रोसेकंड में लौट रही है, अर्थात् वह वस्तु 50,000 फुट या लगभग 10 मील दूर है।

ये प्रथम रेडार केवल थोड़ी दूर—10 से 30 मील तक—से वस्तु का पता लगा सकते थे। दूसरे महायुद्ध से ठीक पहले, नितान्त दैवयोग से, एक रेडार-ट्यूब का आविष्कार हुआ जो सैकड़ों मील दूर अपनी तरंगें फेंक सकता था। इसे मैग्नेट्रान कहते हैं।

इंग्लैण्ड में मैग्नेट्रान 400 मील दूर से नाज़ी विमानों का पता लगा सकता था। अचानक हमले असम्भव हो गए और जब एक हमले में जर्मनी के 170 विमान नष्ट हो गए तो जर्मन भयभीत होकर पीछे हट गए। इससे इंग्लैण्ड को सुस्ताने का समय मिल गया। एक सेकण्ड में 10 करोड़ बार स्पन्दित हो रही किरणोंवाला मैग्नेट्रान ही ऐसा वाल्व माना जाता है, जिसने वह युद्ध जीता।

चलचित्रों से टेलीविजन तक

जब डेगुयेरे ने खोज से यह पता लगा लिया कि सिल्वर नाइट्रेट प्रकाश के प्रति सुग्राही है तो उसने पारे की भाप से अपनी शीशे की प्लेटें डेवलप करना सीखा और फिर इन्हें सोडियम सल-फेट में डुबोया जिससे पहला फोटोग्राफ तैयार हुआ। शीशे के बदले किसी और चीज़ की खोज में जार्ज ईट्समैन ने फोटोग्राफी के इमल्शन से लुलाइड पर तह चढ़ा दी, इसे महोगनी लकड़ी की

चरखी के गिर्द चढ़ाया और इस तरह प्रसिद्ध 'कोडक' हमें दिया ।

गृहयुद्ध में घायल व्यक्तियों की कृत्रिम टांगें बनाने से विचारों की एक शृंखला-सी चल निकली, जिसके कारण चलचित्रों का आविष्कार हुआ । इस समस्या का हल ढूँढ़ा जाने लगा था कि टांग चलती कैसे है । क्या दौड़ता घोड़ा चारों खुर एकसाथ धरती से उठा लेता है ? ईडवियर्ड मुएब्रिज ने छविचित्रों के एक क्रम से इसका समाधान ढूँढ़ लिया था । उसने 24 कैमरे एक पंक्ति में लगा दिए और हर एक के शूटर के साथ एक धागा बांध दिया । ज्योंही घोड़ों ने दौड़ना शुरू किया कि एक के बाद एक धागा शूटर को चलाकर टूटता गया । इन छविचित्रों से ज्ञात हुआ कि घोड़ा दौड़ते समय चारों टांगें एकसाथ उठाता है ।

इसके अतिरिक्त इस बात का भी पता लगा कि प्रत्येक फोटो तेजी से घुमाया जा सकता है और परदे पर इस तरह दिखाया जा सकता है कि सब फोटो मिलकर एक गति का भ्रम उत्पन्न करें । इसका अर्थ हुआ कि हम प्रत्येक फोटो का एक अनुक्रम देखते हैं जिसमें हर फोटो एक क्षण के लिए दिखाई देता है ।

परन्तु समस्या सामने आई कि इस चलचित्र से बोलता और गाता चलचित्र कैसे बनाया जाए ? बीस वर्ष की निष्फल चेष्टा के बाद कहीं अद्भुत इलेक्ट्रॉन-सम्बन्धी विज्ञान में सफलता मिली ।

एक फिल्म (24 चित्र प्रतिसेकण्ड के हिसाब से) अनवरत तीव्रतायुक्त एक प्रबल लैम्प लगे एक बक्से द्वारा परदे पर दिखाई गई । जिस प्रकार की इलेक्ट्रॉनिक ट्यूब इसमें प्रयुक्त की गई थी वही इस आविष्कार की जान थी ।

इलेक्ट्रॉन-तरंगों को मिलाने और अलग करने से स्वर को बिजली में और बिजली को स्वर में बदला जाता है ।

बोलते चलचित्र से टेलीविजन की ओर जो कदम उठा वह बहुत कठिन रहा । पहले-पहल घूमते हुए छिद्रित तवे पर प्रयोग किया गया । पर इससे गति इतनी कम थी कि आकृति स्पष्ट नहीं आती थी । तब छोटे-छोटे आईने एक घूमते पीपे पर लगाए गए । पर यह भी पूरा उपयोगी सिद्ध न हुआ । अन्त में, वी० के० ज्वोरिकिन

ने 1933 में अपने इलेक्ट्रॉनिक स्कैनर द्वारा सफलता पाई ।

जिस प्रकार टेलिफोन में वोल्टेज बदलती स्वर-तरंगों के साथ परिवर्तन करता है, उसी तरह एक चित्र वोल्टेज बदलते प्रकाश और छाया के साथ बदलता है । प्रकाश जितना तेज होगा, उतने ही फोटो इलेक्ट्रॉन मुक्त होंगे ।

एक कैथोड (ऋणाग्र) किरण-ट्यूब का पेन्सिल-दण्ड एक सेकण्ड में 525 रेखाओं में विभेदन करता है और तीस सम्पूर्ण फोटो प्रस्तुत करता है जिनसे मानव-चक्षु इस भ्रम में रहता है कि एक गति दृष्टिगोचर हो रही है ।

किसी चित्र को रंगों में प्रसारित करने के लिए प्रकाश के प्रत्येक बिन्दु को तीन मूल रंगों—लाल, पीले और नीले—में परिवर्तित किया जाता है । इन तीनों रंगों में से प्रत्येक रंग की तरंगों की विभिन्न लंबाई को मिलाया जाता है । इन तीन मूल रंगों को, तीन विभिन्न कैमरों द्वारा अलग-अलग सम्प्रेषित किया जाता है और तीनों को ग्रहण-बिन्दु पर मिला दिया जाता है । इससे मूल रंग का अद्भुत द्विगुणन हो जाता है ।

अब यांत्रिक मानव, जो चीज भी इस धरती पर देखता था, उसे अन्धेरे-धुप्प तक में अपने रेडार-चक्षु द्वारा प्रसारित कर सकता था और रंग की शोभा को पकड़ सकता था ।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शक

अभी तक हम कल्पना करते आ रहे थे कि इलेक्ट्रॉन अति-सूक्ष्म कण हैं जो एक तार के साथ-साथ ऐसे बहते हैं जैसे एक नली से कोयला । फिर भी प्रकाश-तरंगों साधारण तरंगों के समान व्यवहार करती हैं ।

इस विचार ने कि इलेक्ट्रॉन के कण भी शायद तरंगों की तरह व्यवहार करते हों, किसी वस्तु के आकार को बड़ा करने में नई सम्भावनाएं प्रदान कीं । साधारण सूक्ष्मदर्शक यंत्र उस प्रकाश की तरंगों की लम्बाई द्वारा सीमित हो गया है । परन्तु कैथोड-किरणें इतनी सूक्ष्म हैं कि वे प्रकाश-किरणों की लम्बाई का

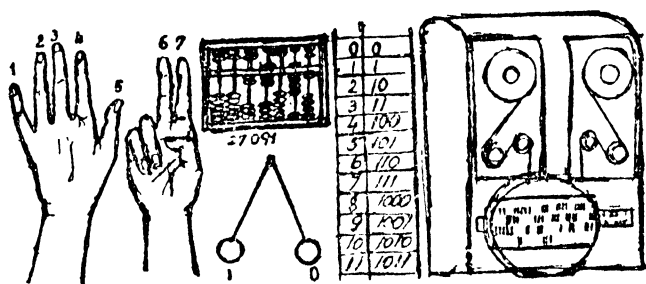
1/1,00,000 भाग हैं। उस स्थिति में, उन्हें किसी वस्तु के आकार को बड़ा करने के लिए प्रकाश-किरणों के स्थान पर इस्तेमाल क्यों न किया जाए ? जितनी छोटी वस्तुओं को प्रकाश द्वारा बड़ा किया जा सकता है, कैथोड-किरणें उनसे २०० गुना छोटी वस्तुओं को बड़ा करने के योग्य होंगी। वे एक इंच के दस लाखवें भाग तक के सूक्ष्म विवरण को दिखा सकेंगी।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शक यंत्र ने यह सिद्धान्त प्रमाणित कर दिया। परन्तु, इस प्रकार बड़ी की गई वस्तु की आकृति इतनी छोटी थी कि उसे साधारण आंख से देखानहीं जा सकता था। फिर कैथोड-किरणों की शक्ति को प्रकाश-किरणों में परिवर्तित किया गया और जो वस्तु पहले अदृश्य थी, जैसे विषाणु, अन्त में दिखाई देने लगे। यांत्रिक मानव ने शीशे में लेंस की बजाय चुम्बकीय क्षेत्र का इस्तेमाल किया और उसकी आंखें वह वस्तु भी देख सकती थीं जो एक इंच का केवल 10 लाखवां भाग चौड़ा था।

ऐसी ही 'एक्सरे' प्रकाश व रेडियो-तरंगों की तरह काम करती हैं, यद्यपि वे प्रत्यक्ष प्रकाश-तरंगों से 10,000 गुना छोटी हैं।

यांत्रिक मानव की बदौलत ही सूक्ष्म से सूक्ष्म और विशाल से विशाल वस्तु हमारे जीवन में हर रोज की देखी-सुनी वस्तु बन गई है। एक सेकण्ड का दस लाखवां भाग आज उतना ही वास्तविक बन गया है जितना कि एक सेकण्ड। ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी किरणों की १० लाख धड़कनें अब उस परमाणु घड़ी की एक सेकण्ड टिक् का प्रतिनिधित्व करती हैं जो अन्तरिक्ष की खोज की यात्रा में हमें समय बताएगी।

एक बार जब यांत्रिक मानव ने इलेक्ट्रॉन की एक सेकण्ड में 10 लाख की गिनती करना सीख लिया तो एक नया क्षितिज खुल गया। यह गणित-सम्बन्धी गिनती की एक नई और इलेक्ट्रॉनिक विधि थी। जब यांत्रिक मानव ने एक सेकण्ड की 10 लाख गुना गति से गिनना सीख लिया, तब यंत्र-मानव (रोबोट) के मस्तिष्क का निर्माण शुरू हुआ।



गिनने की विधियां

16. गणित-यंत्र

प्रकृति की प्रत्येक वस्तु अत्यन्त विशुद्ध तथा सशक्त नियमों के अनुसार परम सत्यता से निर्मित हुई है। उदाहरणार्थ, प्रत्येक मधुमक्खी 40 मील प्रतिघण्टा की गति से आगे चलने के लिए एक सेकण्ड में 440 बार अपने पंख फड़फड़ाती है। इसकी आंखों में ठीक षड्भुजीय 5,000 खण्ड होते हैं। पिस्सू एक सेकण्ड में 700 बार पंख फड़फड़ाता है। मक्खी की आंख में 7,000 लेंस लगे होते हैं। मकड़ी के हर जाले में 300 अलग-अलग तंतु होते हैं।

स्वयं सभ्यता का स्तर इसके गणित-शास्त्र के विकास से मापा जा सकता है। मिस्र के प्राचीन लोग पिरामिडों के निर्माण के लिए पर्याप्त रेखागणित जानते थे। यूनानियों ने कोलम्बस से 2,000 वर्ष पूर्व त्रिकोणमिति द्वारा पृथ्वी की परिधि मापी थी। यूरोप की सभ्यता ने इन दोनों गणित-शास्त्रों को और अरब देश की दशमलव-व्यवस्था को इकट्ठा किया ताकि पृथ्वी को मान-चित्रों पर अंकित किया जा सके, और इस तरह आविष्कारों के युग का सूत्रपात किया।

बाद की एक शताब्दी में गणित-शास्त्रियों ने नवआविष्कृत घड़ी के लटकन का अध्ययन किया और गति को मापने के लिए कैलकुलस (गणना का प्रकार-विशेष) की नई भाषा का निर्माण

किया । आज यांत्रिक मानव की शक्ति की वृद्धि के लिए गणित-शास्त्रियों को और अधिक कौशल से काम करना होगा ।

आज मापने के मानदण्ड को शून्य के 'मिलिक्यूरी' (एक परमाणु के 37 खरब के $1/1000$ वें खण्डन प्रतिसेकण्ड) का और 'मेगापा-सेक' (30 लाख 50 हजार प्रकाशवर्ष) का भी हिसाब करना है ।

मशीनी गणक

पहली गणक मशीन तैयार करने का श्रेय फ्रांस के ब्लेसे पास्कल को है । उसके पिता ने, जो टैक्स कलेक्टर थे, नॉर्मण्डी की टूटी-फूटी अर्थ-व्यवस्था के पुनर्गठन का प्रयास किया था । 17 वर्ष के ब्लेसे ने गणित-सम्बन्धी हिसाब-किताब में अपने पिता के कार्यालय के अमले की सहायता की । उसने 1642 में एक घड़ी के दांतेदार चक्रों से एक जोड़ मशीन का आविष्कार किया ।

पास्कल के चक्रों में गियर लगे थे जिससे एक चक्र पर लगे दस दांतों की गति से दूसरे चक्र का एक दांता आगे बढ़ता था । यह सादा यंत्र आज भी नकद रजिस्ट्रों और मोटरगाड़ियों की मील गणक मशीनों में प्रयुक्त होता है ।

1667 में, लिब्निज़ ने गुणा करनेवाली मशीन में इसी सिद्धान्त का प्रयोग किया । बाद में पास्कल तथा लिब्निज़ के यन्त्रों को मिलाकर गणन-यन्त्र बनाया गया, जिसके सर्वाधिकार अमरीका में 1887 में प्राप्त किए गए थे ।

कम से कम दो शताब्दियों तक गणित-शास्त्रियों का मुख्य काम अवकल (डिफरेंशियल) समीकरण को हल करना रहा है । 1822 में, चार्ल्स बैबेज, जो ऑक्सफोर्ड में विद्यार्थी था, अवकल समीकरण की प्रकाशित तालिकाओं में कई गलतियां देखकर चकित रह गया था । वह जानता था कि मानव-मस्तिष्क थक जाता है और संख्या की गिनती करने के उस उबा देनेवाले काम के बारे में उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता जिसे वह 'मानव-बुद्धि का सबसे निचले स्तर का काम' कहता था । बैबेज जान गया कि एक मशीन कहीं ज्यादा ठीक काम करेगी ।

रॉयल सोसाइटी के प्रधान सर हम्फ्री डेवी, बैबेज द्वारा निर्मित एक ऐसी मशीन के प्रति आकर्षित हुए जिसमें 18 चक्र लगे थे और जो पांच अंकों की संख्याओं का हिसाब कर सकते थे। डेवी ने एक ऐसी मशीन की तैयारी में सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त करने में उस प्रतिभाशाली युवक की सहायता की, जो 20 अंकों की संख्याओं में हिसाब करती।

बैबेज के नये 'गणक इंजन' को उस यंत्र जैसा बनाना था जो जोड़ करनेवाली कई मशीनों को इकट्ठा करने से बन जाता। उसने अनुमान लगाया कि पूरे साइज की मशीन करीब 2 टन वजन की होगी और उसके बनने में दो से तीन साल तक लग जाएंगे।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उसकी मशीन अधिक से अधिक सुसम्पन्न होती गई और 239 ब्योरेवार इंजीनियरिंग नक्शे तैयार करती रही। बैबेज एक ऐसी सम्पूर्ण मशीन की कल्पना में डूब गया था जिसके 50,000 पुर्जे होंगे। उसने अन्दाजा लगाया कि 60 जोड़ अथवा घटाव एक मिनट में पूरे किए जा सकते हैं और इन्हें मुद्रित किया जा सकता है; 50-50 अंकों की दो संख्याओं का एक मिनट में गुणा किया जा सकता है; और 100 अंकों की एक संख्या को 50 अंकों की दूसरी संख्या से 1 मिनट में विभक्त किया जा सकता है।

परन्तु बैबेज ने इस मशीन को कभी पूरा नहीं किया। उसके जीवनकाल में ऐसा इंजीनियरिंग ज्ञान नहीं था जो उसकी कल्पना को कार्यरूप दे सकता। इंजीनियर यह नहीं जान सके कि धुरियों, गियरों और घूमते तवों की एक लंबी पंक्ति को चलाने के लिए पर्याप्त शक्ति कैसे दी जाए; और उसका मस्तिष्क ऐसा था जो उस समय एक सौ वर्ष आगे की कल्पना कर सकता था। उसके सपनों को केवल बिजली तथा अधिक उन्नत इंजीनियरिंग की सहायता से ही मूर्तरूप दिया जा सकता था। बैबेज निराश होकर इस दुनिया से उठ गया। परन्तु उसके सपने को 1925 में मैसाचुसेट्स की शिल्पशास्त्र संस्था के वानेवर बुश तथा उसके सहायकों ने सच्चा सिद्ध करने का यत्न किया।

बुश ने एक यंत्र तैयार तो कर लिया, परन्तु वह गणित-सम्बन्धी यंत्र भी कोई ज्यादा समय की बचत न कर सका ।

इलेक्ट्रॉनिक गणक

1935 में इंजीनियरों का ध्यान एक नई और अद्भुत इलेक्ट्रॉनिक ट्यूब की ओर आकर्षित हुआ । वह एक ऐसी दोहरी ट्रायोड निर्वात ट्यूब थी, जो बिजली को गुजरने देती थी और उसे पूर्णतया असंवाहक बनाया जा सकता था । गणित-शास्त्रियों ने शीघ्र ही इसके महत्त्व को जान लिया । एक ऐसी ट्यूब जो एक सेकण्ड का 20 लाख गुना गिन सकती है अथवा पूर्णतया 'मृत' हो सकती है, उसे गिनती करने की नई विधि में ढाला जा सकता है । गणित-सम्बन्धी समीकरण बिजली के कौंधे की गति से हल हो सकते थे ।

जब द्वितीय महायुद्ध छिड़ा तो अमरीका की मानक समिति के डा० जॉन डब्ल्यू० मॉण्डस्ले ने गणक के एक चौंका देनेवाले यंत्र का सुझाव दिया । उनका दावा था कि गणित-सम्बन्धी सभी पेचीदा समस्याएं, केवल विद्युत्-धारा की धड़कनों का जोड़ करने अथवा घटाव करने से हल हो सकती हैं । इंजीनियर केवल विद्युत्-सम्बन्धी संसर्गयुक्त यंत्र की तैयारी में जुट गए ।

गियरों, कैमों और तलों के स्थान पर इलेक्ट्रॉनिक ट्यूबों से काम लिया गया । हज़ारों ट्यूबों को इस प्रकार रखा गया जैसे जोड़ की हज़ारों मशीनों को इकट्ठा किया जाए । ज्योंही बिजली छिदे हुए गतों के छेदों में दौड़ती थी, उसी क्षण सारा हिसाब निर्वात नलियों में किया जा सकता था । एक सेकण्ड में दस लाख हिसाब किए जा सकते थे और अत्यंत पेचीदा समस्याएं इतने कम समय में हल हो जातीं कि विश्वास करना कठिन हो जाता ।

इस पहले इलेक्ट्रॉनिक गणक को तैयार होने में ५ वर्ष लगे । इसमें 200 मील लंबा तार था, 3,000 रिले, 150 विद्युत्-मोटरें, 23,000 इलेक्ट्रॉनिक ट्यूबें, और 3 बिजली टाइपराइटर लगे थे । कुल मिलाकर उसमें करीब 35,000 पुर्जें थे और उसका वजन 100 टन था । तेज गति से हिसाब करने के सम्बन्ध में बैबेज का

सपना इस मशीन ने साकार कर दिया । इस चमत्कारपूर्ण आविष्कार द्वारा गणितशास्त्र के नीरस काम को समाप्त कर दिया गया ।

मशीनी वर्णमाला

कृत्रिम मस्तिष्क की यह गति गिनती की दशमलव-व्यवस्था की साधारणतया १० संख्याओं के स्थान पर केवल दो संख्याओं पर आधारित एक नई मशीनी भाषा द्वारा सम्भव हुई । एक इलेक्ट्रॉनिक धड़कन 1 हो सकती है, और कोई धड़कन 0 नहीं हो सकती और इस प्रकार किसी संख्या का प्रतिनिधित्व 1 तथा 0 के चिह्नों के क्रम द्वारा हो सकता है । मशीनी मस्तिष्क के लिए 1 से 10 तक अरबी संख्या की सरलता का लाभ वही था जो रोमन संख्या पर दशमलव-व्यवस्था की श्रेष्ठता का है ।

ट्यूबों को इस तरह रखा गया था कि वे संख्या को धड़कनों में परिवर्तित कर सकें और फिर लगातार जोड़ों में धड़कनों की संख्या को गिन सकें । गुणा, भाग, वर्ग अथवा वर्गमूल ; अर्थात् किसी भी प्रकार का हिसाब जोड़ों के क्रम में तोड़ दिया जाता था । उदाहरणतः 789 को 43 से गुणा करने के लिए, इलेक्ट्रॉनों को 42 बार 789 का जोड़ करने देना होता है । गणक अत्यंत विशुद्धता से एक सेकण्ड के 10 लाखवे भाग में इसे कर डालता है ।

पांच इलेक्ट्रॉनिक ट्यूबों की पंक्ति में 00001 बराबर होता है 1 के; 00010 बराबर है 2 के; 01111 बराबर होते हैं 15 के; अर्थात् दाएं से बाएं की ओर केवल प्रत्येक अंक को दुगुना कर दो और फिर सभीका जोड़ कर दो ।

इस दोहरी व्यवस्था में 10 अनूदित होता है 2 में; 11, 3 में, 4 लिखा जाता है 100 में, 5, 6, 7, 8, 9, 10 क्रमशः बनते हैं 101, 110, 111, 1000; 1001, 1010 में । निन्यानवे कहने की अपेक्षा 'एक-एक-ओह-ओह-ओह-एक-एक' कहने में अधिक समय लगता है; परन्तु इलेक्ट्रॉनिक गणक इसे विद्युत्-गति से कर डालता है । फिर भी इसके निष्कर्ष अन्तिम रूप में स्वचालित टाइपराटर द्वारा लिखे उत्तर वापस दशमलव-संख्या में अनूदित होते हैं ।

17. स्वचालित मशीनें

दोनों महायुद्धों के बीच सादा स्वचालित मशीनें इस तरह धीरे-धीरे हमारे जीवन का अंग बनती गईं कि बाद में वे अनिवार्य प्रतीत होने लगीं । बहुत कम लोगों ने इस बात का एहसास किया था कि ये मशीनें यंत्र-मानव-युग के शैशवकाल की प्रतीक थीं ।

गैस और बिजली के मीटरों को घर में बिजली-व्यवस्था के अभिन्न अंगों के रूप में स्वीकार कर लिया गया । गृहिणी को थर्मोस्टाट पसन्द आया, जो ताप को नियंत्रित करता था । उसके लिए स्वचालित वाशर बड़े काम की चीज़ थी जिससे धोबी की मज़दूरी बच जाती थी । परन्तु उसे रत्ती-भर सन्देह नहीं था कि ये यंत्र उन्नति करते-करते यांत्रिक मस्तिष्क बन जाएंगे जो अभी से उसके जीवन पर छाए जा रहे हैं ।

स्वचालित यंत्र घरों से निकलकर भण्डारों तथा गलियों में बिक्री की मशीनों के रूप में आ पहुँचे जो धीरे-धीरे 'च्युइंगम' से लेकर मक्के का लावा, कुल्फी और शरबत तक बना देतीं । फिर स्वचालित यंत्र अचानक सड़कों के आवागमन का निर्देशन करने लगे और चौकों पर पैदल लोगों तथा मोटरगाड़ियों को लाल तथा हरी रोशनी दिखाकर उन्हें चलने के नियम सिखाने लगे ।

कारखानों पर भी इन स्वचालित यंत्रों का आक्रमण बहुत धीरे-धीरे हुआ । पहले-पहल स्वचालित नियंत्रण-मशीनें मात्र यंत्रों, स्लाइड वाल्वों, कैमों, गियरों और लीवरों के रूप में ही थीं । वाट का नियामक मशीनी-युग के जन्म से ही भाप-इंजन को नियंत्रित कर रहा था । उस शताब्दी के अन्तिम काल में पहले-

पहल तो कुछेक मशीनें चलाने के लिए केवल एक विद्युत्-उत्पादक मोटर कारखाने में लाई जाती । बाद में ऐसी छोटी-छोटी मोटरें अधिक कार्यकुशल सिद्ध हुईं । उन्हें बटन दबाकर, इतनी विद्युत्-शक्ति का प्रयोग करते हुए जितनी की आवश्यकता होती है, चलाया तथा ठहराया जा सकता है ।

चलाने और ठहराने की इस विधि की बदौलत इस प्रकार की मशीन तैयार करना सम्भव हो सका जो बराबर कई काम कर सकती थी । एक समान केन्द्र के इर्द-गिर्द कई तकले घूमने लगे । काम की किस्म के अनुसार औजार स्वतः हिलते-डुलते थे, पहले उस वस्तु का खुरदरापन हटाते, फिर उसे बरीक काटते और अंत में तैयार कर देते ।

थाइरेट्रान ट्यूब

जब इस बात का पता लगा लिया गया कि गैस से भी इलेक्ट्रॉन ट्यूब इतनी विद्युत्-शक्ति उत्पन्न कर सकती है जो स्विच फेंक सकती और विद्युत्-उत्पादक मोटर को बन्द कर सकती है, तब कारखाने में स्वचालित नियन्त्रण के नए युग का समारम्भ हुआ ।

एक थाइरेट्रान ट्यूब में भाप अथवा गैस एक ट्रायोड के शून्यक में डाली जाती है और अन्य प्रक्रिया जारी की जाती है । इससे अत्यंत शिथिल करेंट, जब थाइरेट्रॉन से मिलती है तो उसके द्वारा हर प्रकार की मशीनी शक्ति पर नियंत्रण किया जा सकता है ।

फोटोट्यूब

अब अन्य इलेक्ट्रॉनिक ट्यूबों, विशेषकर फोटोट्यूब के लिए नई सम्भावनाएं उत्पन्न हो गईं । फोटोट्यूब इतनी सुग्राही होती है कि यह २५ मील दूर से मोमबत्ती के प्रकाश को ग्रहण कर सकती है । जब कभी ट्यूब के कैथोड सिरे पर प्रकाश ग्रहण किया जाता है तो विद्युत्-धारा बहने लगती है । इलेक्ट्रॉन को पाजिटिव प्लेट की ओर चलने के लिए तैयार किया जाता है । परन्तु जब एक गुजरती वस्तु प्रकाश को बन्द कर देती है तो धारा बन्द हो

जाती है। प्लेट-धारा शिथिल होते हुए थाइरेट्रॉन ट्यूब को शक्ति प्रदान करती है। वह इस शिथिल ट्यूब को इतना बड़ा कर देती है कि वह एक स्विच को फेंक देती है और विद्युत्-उत्पादन मोटर को चला अथवा ठहरा देती है।

कारखाने में इस ट्यूब से सभी प्रकार के काम लिए जा सकते थे। यह पुर्जे जोड़ने के कारखाने में बिना लेबल की अथवा बेकार वस्तुओं को पता दे सकती थी। यदि कोई अनधिकारी आगन्तुक प्रवेश करता तो यह घण्टी बजा देती। जब बर्मा किसी विशिष्ट गहराई तक पहुंच जाता तो यह बर्मे को रोक देती। वह परिष्करणशाला में गैस की मात्रा को कम कर सकती या आवश्यक स्तर तक के आगे न बढ़ने देती।

इलेक्ट्रॉनिक ट्यूब की श्रेष्ठता

अब सभी प्रकार की इलेक्ट्रॉनिक ट्यूबें कारखानों में आने लगीं। उनसे गरम करने, वस्तुओं को अलग-अलग करने, मापने और निरीक्षण करने आदि का काम लिया जाने लगा। वे भट्टी के अन्दर धातुओं को अलग-अलग करतीं। वे 10 इंच मोटी इस्पात की दीवार का चित्र लेकर बता सकतीं कि इसमें दरार है या नहीं। उनकी सहायता से एक फुट मोटी प्लाई लकड़ी तैयार की जा सकती। ये सञ्जियों को सुखाने में उस समय का दसवां भाग लेतीं जितना चूल्हे पर चढ़ाने में लगता है। ये धातु की तह को गरम करतीं जिससे गियरों की सतह और ज्यादा मजबूत और टिकाऊ हो जाती।

इलेक्ट्रॉनिक ट्यूबों के कारण कारखानों की मशीनों में नई विशुद्धता तथा तेज़ी आ गई। अब संगणक, गढ़नेवाले औज़ार का अर्धव्यास नियंत्रित कर सकते थे। इस ट्यूब की धड़कनें गढ़ने के औज़ार की दूरी और रफ़्तार नियंत्रित करती थी।

स्वचालित नियंत्रण ने मानव द्वारा नियंत्रण का स्थान ले लिया। एक यंत्र, हर गति को मापता और इसकी सूचना निरन्तर आगे के नियंत्रक को देता रहता। इस स्थिति में मशीन, अपने

नये स्वामी, इलेक्ट्रानिक ट्यूब को स्वीकार करने के लिए तैयार थी । इस स्वामी और इसके दास यंत्र-रचनाशास्त्र ने मशीन की सभी गतियां नियमित तथा नियंत्रित कीं । दूसरे महायुद्ध के बाद, स्वतः नियंत्रण विकसित होकर यांत्रिक मस्तिष्क बन गया था जो पूरी तरह काम करता था ।

लोहे का हाथ

द्वितीय महायुद्ध के दौरान जब काम बढ़ गया तो सामग्री को तेजी से लाने और सामान को ले जाने के लिए सभी ट्रक और वाहकयंत्र फैक्टरियों में लाए गए । वे सामान को एक मशीन से दूसरी मशीन तक ले जाने के काम में, पुर्जों जोड़ने के कारखाने के भाग बन गए । अगला कदम उस यांत्रिक लौह-हस्त को लाना था जो सारे मशीनी काम को एक निरन्तर धारा में बहा सके ।

इन्सान के हाथ में सात मूलगतियां होती हैं जो उस समय आपस में मिल जाती हैं जब हाथ किसी वस्तु को पकड़ता है, इर्द-गिर्द घुमाता है, हिलाता या उठाता है । पचास मांसपेशियों के संतुलित खिंचाव के नियंत्रण के अधीन 30 जोड़ होते हैं । मांसपेशियों के ये खिंचाव स्नायुओं से आ रही संकेत-घड़कों से पैदा होते हैं ।

फोर्ड पहले व्यक्ति थे जिन्होंने एक फैक्टरी में एक ऐसी मशीन तैयार करने की चेष्टा की जिसका आंतरिक गठन एक जीवित प्राणी की शारीरिक रचना की नकल हो । यांत्रिक हाथ-बांह उस यंत्र-मानव की पहली यंत्र-रचना थी, जो ठीक ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी अंगों के समान काम करता था । वह लचीली, जोड़दार बांह थी । इस बांह के सिरे पर एक पेचीदा शिकंजा लगा था जो कुछ-कुछ इस्पात के हाथ-सा लगता था । यह शिकंजा वस्तुओं को पकड़कर औजार को दे देता ।

इसका नियंत्रण कुछ दूरी पर एक पियानोला के संगीत के एक रोल के समान छिदे कागज के रोल द्वारा होता था । ये

छेद केवल विशिष्ट बिन्दुओं पर बिजली का सम्पर्क होने देते थे । वे सभी अलग-अलग हरकतों को दिखाते थे । वे संकेत करते कि रफ्तार क्या हो, कब उंगलियां आपस में जुड़ जाएं, हाथ कितना आगे बढ़े, कहां और कैसे वस्तु को रखा जाए ।

इस हाथ-बांह को शानदार सफलता मिली । इसने समय, धन और मानव-श्रम बचाया । वह यांत्रिक मस्तिष्क, जिसने युद्ध के दौरान बहुत कुछ कर दिखाने की योजना बनाई थी, अब फोर्ड मोटरगाड़ी का उत्पादन तेज कर रहा था । इंजीनियर अपने-आपसे पूछते, यह यंत्र-रचना कारखाने में सभी अन्य मशीनों को आदेश क्यों नहीं दे सकती और इस तरह सारी फैक्टरी का नियंत्रण क्यों नहीं कर सकती ?

स्वचालित फैक्टरी

सभी इलेक्ट्रॉनिक आविष्कार, अब भविष्य में एक नई छलांग के लिए उपलब्ध थे । एक सारी फैक्टरी को स्वचालित बनाना एक खरब डालर का जुआ था । फोर्ड ने यह रकम दांव पर लगा दी ।

स्वचालन का अर्थ मौजूदा मशीनों को जोड़ देने से कहीं ज्यादा था । सभी मशीनों को फिर से डिजाइन करना और बनाना था और सारी फैक्टरी को पहले से तैयार किए गए बिजली के यंत्रों द्वारा नियंत्रित करना था । यह सहस्रबाहु राक्षस एक विशाल भवन के बराबर था जो एक लंबे समय से 540 मशीनी काम करता था । इससे 265 स्वचालित बर्मों, 6 पीसने की मशीनों, २१ छेद करनेवाली मशीनों, 56 चौड़ा करनेवाली मशीनों, १०१ गलानेवाली मशीनों, 106 टेप करनेवाली मशीनों और १३३ निरीक्षण करनेवाली मशीनों का काम इसके द्वारा होता था ।

मापने का काम अब धातु के औजारों के स्थान पर विद्युत्-घड़कों द्वारा होता था । गतियां लीवरों के स्थान पर तारों को जोड़ने से लाई जाती थीं । फोरमैन वह चुम्बकीय फीता था, जो उन इलेक्ट्रॉनिक ट्यूबों का 'हां' या 'ना' में निर्देशन करता, जो

तैयार ड्यूटी पर खड़े सैनिकों की तरह उन आदेशों को प्रसारित करती थीं। इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्कों को यांत्रिक मांसपेशियों के साथ जोड़ दिया गया था।

स्वचालन ने बड़े पैमाने पर उत्पादन के सभी साधारण सिद्धांतों को पुराना सिद्ध कर दिया था। फैक्टरी में काम मानव हाथों की अपेक्षा हजार गुना तेजी से होने लगा था। आरम्भ में जो धातु की एक छड़ थी, उसे छेदा गया, चौड़ा किया गया, उसके दांते बनाए गए, छीला गया, कुचला गया, चीरा गया, कतरा गया, पीसा गया, सान चढ़ाया गया। इन सब कामों ने मिल-मिलाकर एक घंटे में 150 इंजन बनाकर तैयार करने शुरू कर दिए।

फोर्ड के कार्य ने, स्वचालन को सारे अमरीका में छा जाने में सहायता की। टेलिफोन-व्यवस्था करीब 90 प्रतिशत स्वचालित हो चुकी है। सख्खिद्र फीते संख्या को अंकित करने लगे हैं। इलेक्ट्रॉनिक गणक विद्युत्-गति से हिसाब करने लगे हैं। केवल एक सह-धुरी केबल, सैकड़ों अलग-अलग टेलीफोन की बातचीत, रेडियो-कार्यक्रमों और टेलीविजन को एकसाथ पहुंचाती है। प्रसारण-केन्द्र, हर एक प्रकार की सूचनाएं और संदेश सारे देश में फैला देते हैं।

तेल के कारखानों में स्वचालित यंत्रों द्वारा, जो बहाव, ताप, दबाव तथा स्तर की देखभाल करते थे, एक दिन में 50 लाख 50 हजार गैलन तेल निकाला जाने लगा। बिजली के बल्ब बनानेवाले कारखानों में दिन-रात शीशे की एक नदी बहती रहती जिससे एक मिनट में 1,200 बल्ब तैयार होते।

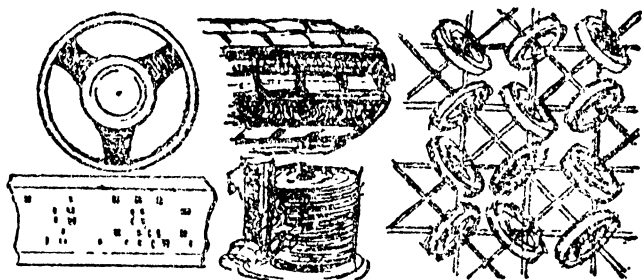
हर कारखाने पर स्वचालित यंत्रों का प्रभाव दिखाई दे रहा था। मापने, इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक यंत्र, लोहे की चद्दरों के दबाव, उनकी कठोरता और त्रुटियों का निर्णय करते। फोटोइलेक्ट्रिक सेल कागज और कपड़े की बनावट, चिकनाई तथा पारदर्शिता का निर्णय करते। स्वतःचलन न केवल वस्तु को आकार देता, वह इसका वजन तथा दबाव और मोटाई नापता, और कागज

के रोल पर क्षण-क्षण में आधार-सामग्री छापता । यह अभीष्ट कार्य को पहले से ही बता देता और अपनी त्रुटियां स्वयं निकालता ।

इस स्वतःचलन की विधि द्वारा माल तैयार करने की विधि में सम्पूर्ण परिवर्तन लाया गया । उदाहरणार्थ, रेडियो में छोटे से छोटे तार को निकाल फेंका गया और टांका लगाना बन्द कर दिया गया । सारे पुर्जें नए सिरे से तैयार किए गए । तारों के स्थान पर प्लास्टिक के सांचों में पिघली धातु छिड़ककर सर्किट से काम लिया गया । सारा काम अपने-आप होता । रेडियो का बक्सा जो पहले कई टुकड़ों से बनता था, अब पूरे का पूरा सांचे में ढलकर निकलता ।

इस सरलता के कारण प्रतिदिन 10,000 वस्तुएं जुड़कर तैयार हो जातीं । पुरानी विधि से, पूरी एक वस्तु को बनाने में कारीगर का पूरा एक दिन लग जाता था । अब यांत्रिक मानव का फैक्टरी पर राज चलता था ।

शीघ्र ही इस यांत्रिक मानव ने गोदामों को अपने हाथ में ले लिया । मशीनें माल तैयार करके गोदामों के यंत्रमानव के हवाले कर देतीं जो बड़े-बड़े ट्रकों में सामान रखता, सामान पर चिठें लगाता, बही-खाते में दर्ज करता और सारे हिसाब-किताब की मुद्रित प्रतिलिपियां तैयार कर देता । ये सारे काम केन्द्रीय कार्यालय में रेडियो द्वारा नियंत्रित होते । इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क बित्री का सारा सही हिसाब-किताब रखने लगे, वेतनों के कागज भरने लगे, बिल बनाने लगे और इन्हें भेजने लगे तथा उत्पादन को समय के अनुसार नियमित करने लगे ।



विद्युत मस्तिष्क के पुर्जे

18. संगणकों की बाढ़

जिस प्रकार स्वचालित नियंत्रण, श्रमिकों की पेशियों पर पड़े बोझ को हटा रहा है, ठीक इसी प्रकार स्वचालित गणक मशीनें, कार्यालयों में मानसिक बोझ को कम कर रही हैं।

मानव-बुद्धि, गणक मशीनों में सबसे अधिक कार्यकुशल है, परन्तु यह सबसे अधिक सुस्त भी है। चित्रों का क्रम, जिसे हम दृष्टि कहते हैं, दिमाग पर एक सेकण्ड में केवल आठ से तेरह बार उभरता है। एक पेशेवर टाइपिस्ट की अधिक से अधिक स्पीड एक सेकण्ड में केवल चार अक्षर या संख्या है। इस मानव गति का उस इलेक्ट्रॉनिक मशीन से क्या मुकाबला जो एक सेकण्ड में 60,000 प्रकार की सूचनाएं तैयार कर देती है।

इस स्थिति में, कार्यालयों में मानव-बुद्धि के स्थान पर मशीनी बुद्धि का आना अनिवार्य था। आयकर का विश्लेषण, डाक्टरी, बीमा, पेन्शन कोष, सामाजिक सुरक्षा, देश-भर की जनगणना, वोटों की गिनती जैसी नई सेवाओं का तकाजा था कि गणित-सम्बन्धी मशीनें तैयार की जाएं।

किसी भी बीमा-कम्पनी में, जीवन-बीमा कराए हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएं इकट्ठी करने के लिए सैकड़ों पत्रों तथा संख्याओं की आवश्यकता पड़ती है। बैंक द्वारा जारी

किए गए चेक को 20 अक्षरों की आवश्यकता पड़ती है। जरा उन तथ्यों की बड़ी-बड़ी संख्याओं की कल्पना कीजिए जिनके वेतन के हिसाब, लेन-देन के हिसाब, उत्पादन-नियंत्रण, रजिस्टर, अमले के रिकार्ड और बिक्री के अंकों में आवश्यकता पड़ती है।

व्यापारियों के यहां हर वर्ष 200 खरब नये कागज और कई खरब दस्तावेजों को संभाल रखना होता है ; और हर वर्ष यह संख्या बढ़ती ही जाती है। यह कोई ताज्जुब की बात नहीं, जब दफ्तर में काम करनेवाले बाबुओं की संख्या 1930 में 20 लाख से बढ़कर आज डेढ़ करोड़ से भी अधिक हो गई है। गत वर्ष 10 खरब से अधिक चेक लिखे गए, 15 करोड़ नई बीमा-पालिसियां जारी की गईं। केवल बीमा-कम्पनियों को ही हर सप्ताह, 40,000 पालिसियों और 1,00,000 सछिद्र कार्डों का निबटारा करना होता है।

यांत्रिक मानव, 50 वर्षों से अधिक समय से इस कागजी कामों की बाढ़ से निबटता आ रहा है। जब डा० हरमन हॉले-रिथ को 1890 की जनगणना के लिए बुलाया गया तो यह जानकर वे चकित रह गए कि पिछली जनगणना का पूरा लेखा-जोखा ही नहीं किया गया। उन्होंने जान लिया था कि शारीरिक विधि द्वारा जनगणना के निष्कर्षों को सारणीबद्ध करना 1900 में अगली जनगणना से पहले सम्भव नहीं होगा।

उन्होंने जनगणना के तथ्य दिखानेवाले सछिद्र फीते के छिद्रोंवाली ऐसी मशीनों से काम लेना आरम्भ कर दिया जो तथ्यों को अलग-अलग करती थीं और उनका जोड़ करती थीं। उन्होंने बड़ा सादा ढंग अपनाया। जनगणना के एक केन्द्र में प्रवेश करने का एक दरवाजा होता और 13 दरवाजे निकलने के होते हैं। सछिद्र कार्ड अपने-आप अलग-अलग होते, और जिनमें छिद्र नहीं थे, वे रद्द किए जाते।

सछिद्र गत्ते ठीक उस प्रकार का आदेश देते जो बिजली द्वारा चलनेवाली मशीनें समझ सकती थीं। छिद्र विभिन्न प्रकार की सूचनाओं, जैसे अंक, दिनांक, संख्या, धन-राशि आदि का प्रति-

निधित्व करते । मशीन उन छिद्रों से अपना काम पाकर उन्हीं पर अपना उत्तर लिख देतीं । ठेर सारी ऐसी सूचनाओं से उस मशीन की स्मरण-शक्ति का निर्माण होता । उन छिद्रों का प्रतिरूप उसी क्षण बन्द स्विचों के प्रतिरूप का रूप धारण कर लेता । यही प्रतिरूप संख्या अथवा अंक का प्रतिनिधित्व करता । वे सछिद्र गत्ते, बहीखाते में इन्दराज का स्थान लेते ।

ज्यों-ज्यों वर्ष बीतता गया, यह छोटी-सी मशीन उत्तरोत्तर कार्यकुशल होती गई । इसने विशिष्ट अंकों के गत्ते, विशेष दिनांक के लिए विशेष गत्ते, विशिष्ट संख्या से ऊंचे सारे गत्ते, विशिष्ट संख्या से नीचे सारे गत्ते, इन संख्याओं के बीच के सारे गत्ते आदि को चुनना सीख लिया ।

बाद में इस मशीन ने गत्तों के प्रत्येक समूह के पहले और आखिरी क्रम के बाहर और आपस में न मिलते-जुलते गत्ते चुनना भी सीख लिया । इसने आसानी से पहचान लेने के लिए सछिद्र गत्तों को छपे चिह्नों में अनुदित करना आरम्भ कर दिया । इसने गत्ते को एक मशीन से दूसरी मशीन तक ले जाना भी सीख लिया ।

फिर इसने एक प्रमुख गत्ते के छिद्रों को विवरणयुक्त गत्तों के एक समूह में नकल करने का कौशल प्राप्त कर लिया । यह सछिद्र गत्तों के दो सेटों को उसी क्रम के एक सेट में जोड़ देती । ऐसी मशीन जो सभी प्रकार के तरीकों से इस तरह गत्ते अलग-अलग कर सकती है, वह अलग-अलग करने के किसी काम को करने के योग्य भी होती है, चाहे इस काम में रूप, साइज़, वजन, विधि, लक्ष्य अथवा कोई भी अन्य स्थिति क्यों न शामिल हो ।

आज के सछिद्र गत्तों में 80 सीधे खड़े स्तम्भ हैं जो नीचे से संख्यांकित होते हैं । प्रत्येक स्तम्भ में एक छिद्र या केवल एक अंक अथवा अक्षर का प्रतिनिधित्व करनेवाले छिद्र होते हैं । इलेक्ट्रॉनिक नियंत्रक, ट्रैफिक सिपाही की तरह इलेक्ट्रॉनों का उन मार्गों की ओर जिनपर उन्हें छिद्रों द्वारा जाना है, मार्गदर्शन करता है ।

चूँकि मशीनी बुद्धि में, एक सेकण्ड में दस लाख बिजली की धड़कनों की गति होती है और प्रत्येक धड़कन में एक संख्या का

प्रतिनिधित्व करने की क्षमता होती है, इसमें सुधार की सम्भावना सदा रहती है। इसी सम्भावित गति के कारण इन सछिद्र गत्तों को चुम्बकीय फीते में बदल दिया गया है। इस फीते पर चुम्बकयुक्त लोहे के छोटे-छोटे बिन्दु एक सेकण्ड में 60,000 प्रकार की सूचनाएं दे सकते हैं, जबकि इसके मुकाबले में सछिद्र गत्ते एक सेकण्ड में 130 अक्षर दे पाते थे।

आज चुम्बकीय फीते की एक गोट जिसका फीता 4/10 इंच चौड़ा होता है, 25,000 सछिद्र गत्तों की सूचना चुम्बकीय रूप में दे सकता है। इसके अतिरिक्त, फीते में अधिक गति का भी लाभ है। 2400 फुट लम्बे फीते को एक सेकण्ड में 75 इंच की रफ्तार से छः मिनट में खोल सकते हैं।

इस मशीन में जो यंत्र सबसे अधिक समय बचाता था वह था 'स्मृति' डोल। केवल एक वर्ग इंच की सतह पर चुम्बकयुक्त हजारों बिन्दु किसी भी समय, एक सेकण्ड के कुछ हजारवें भाग में बने-बनाए उत्तर उपलब्ध कर सकते थे।

आंकड़ों के दैत्य

द्वितीय महायुद्ध की कोख से जन्म लेनेवाली इन यंत्र मानव के समान गणक मशीनों को, जिनमें से एक पर 50 लाख डालर या इससे भी ज्यादा लागत बैठती थी, हर पांच वर्ष के बाद बदल दिया जाता और सुधारा जाता। प्रत्येक नई मशीन नई क्षमता तथा नई रफ्तार का दावा करती। प्रत्येक की रचना विशेष प्रकार की थी और इसीलिए उन्हें विशेष संज्ञा दी गई है—एनियाक; मार्क 1, 2, 3; बिज़माक; नॉर्क; युनिवाक; एर्मा; जेफिर। ये मशीनें सारे संसार में बन रही हैं। सबका बिलकुल नया मॉडल होता है जो पिछले मॉडल की अपेक्षा अधिक रोबदार होता है।

पहला इलेक्ट्रॉनिक गणक, गोल्डस्टेन का 'एनियाक' नामक गणक, 1940 में बना। वह बम तथा गोली चलाने की गिनती की तालिकाएं तैयार करता था। इसने एक बम के अपने लक्ष्य पर पहुंचने की गति से अधिक तेज़ रफ्तार से उसके प्रक्षेप-पथ की

समस्या का समाधान कर दिया। इसने अमरीकी इंजीनियरों को बता दिया कि वे उस बिजली की तोप पर अपना समय नष्ट न करें जिसपर जर्मनी अपना मूल्यवान समय और धन खर्च कर चुका है। परन्तु एनियाक मशीन ने सिद्ध कर दिया कि यह काम हो ही नहीं सकता? क्योंकि इसमें गम्भीर त्रुटियाँ थीं। वह एक समय में केवल 20 संख्याएं याद कर सकती थी। इसमें प्रयुक्त सख्तिद्र गत्यों ने इसकी गति को धीमा कर रखा था। यह मशीन एक घंटे में केवल 24,000 गतों रख सकती थी। इसमें सुधार की बहुत गुंजाइश थी और सुधार अन्त में किया भी गया।

दूसरा दैत्याकार यन्त्र-मस्तिष्क मार्क 1 अस्तित्व में आया। यह मशीन 4 लाख अंक रख सकती थी, जबकि एनियाक मशीन केवल 3,000 रखती थी। यह एनियाक मशीन 3,00,000 माइक्रोसेकण्ड में जोड़ पूरे करती थी, मार्क 1 उस काम को 20,000 माइक्रोसेकण्ड में करने लगी। मार्क 1 में इतने पुर्जे थे जितने किसीमें नहीं थे—7 लाख पुर्जे और 10,000 छड़ियों की अपेक्षा अधिक गियर।

1952 तक आंकड़े जमा करने की क्षमता 80 लाख प्रकार की सूचना तक पहुँच गई। जोड़ करने का समय 60 माइक्रो-सेकण्ड तक हो गया। 1954 में आंकड़े जमा करने की क्षमता 5 करोड़ अंकों तक पहुँच गई, जोड़ करने का समय 14 माइक्रो-सेकण्ड रह गया और मशीनें हर समय तेज से तेजतर होती गईं। मार्क 2 मशीन, एनियाक से दस गुना तेज थी। मार्क 3 मशीन मार्क 2 की अपेक्षा 20 गुना तेज थी। नया माडल 4,65,000 सख्तिद्र गत्यों के बराबर आंकड़े एकत्र कर सकता था और एक मिनट में विभिन्न प्रकार की 36,00,000 गणनाएं करता था।

युनिवाक मशीन एक सेकण्ड में 1 लाख गणन कर सकती थी। और दो मिनट में इतना काम करती थी जो एक आदमी सारे जीवन में मेज के अच्छे गणक की सहायता से कर सकता था। उसका पहला काम था, 15 करोड़ अमरीकियों के रहन-सहन के ढंगों तथा परिस्थितियों के सम्बन्ध में 1,32,000 संकलनकर्ताओं

द्वारा संकलित विभिन्न प्रकार के 1,20,00,000 विवरणों का विश्लेषण करना। वह एक दिन में विमान द्वारा यात्रा की सीटों के घ्रासतन 60,000 रिज़रवेशन करती थी और एक मिनट में उत्तर की 600 पंक्तियां छाप सकती थी।

जेफिर एक मशीनी भाषाविद् है। इसका आकार एक अल-मारी जितना है। यह अपने-आप अंग्रेज़ी से तीन विदेशी भाषाओं में अनुवाद करती है।

आई० बी० एम० 704 नामक मशीन के पास अब घ्रासत आदमी के 5,000 शब्द-भण्डार की अपेक्षा 60,000 शब्दों का भण्डार है। इसमें 11,79,648 स्मृति सेल हैं जो पहली सछिद्र इलेक्ट्रॉनिक मशीन के एक सेकण्ड में 200 अक्षरों से बहुत दूर की बात है। 25 टन की एर्मा नामक मशीन के तैयार होने में 5 वर्ष लग गए थे। यह बैंक-क्लर्क का काम करती है। प्रमाण उद्धृत करने की भारी फाइलों और बहीखाते के काडों के स्थान पर इस मशीन के आगे एक की-बोर्ड लगा हुआ है।

1958 के मध्य में 1,700 नगर-निगम इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र-मस्तिष्कों का प्रयोग करते थे। इसके अतिरिक्त 3,000 के लिए आर्डर किया गया था। इस एक मशीन के दाम 5 लाख डालर से लेकर 40 लाख डालर तक हैं।

बलवान बीना

इस प्रकार विशाल यन्त्र-मस्तिष्क आकार में बढ़ता ही गया। फिर एक समय ऐसा आया जब इसका भारी-भरकम आकार एक गम्भीर बाधा बनकर सामने आया। उदाहरण के लिए, महाद्वीप के आर-पार टेलीफोन के लिए 1,12,000 रेसिस्टर्स तथा 97,000 कैपेसिटर्स के अतिरिक्त 12,300 वैक्यूम ट्यूबों की आवश्यकता पड़ती है। इन कई ट्यूबों को ठण्डा रखने के लिए बहुत खर्च करना पड़ता है। वैक्यूम ट्यूब, जिसने स्वयं इलेक्ट्रॉनिक युग का सूत्रपात किया था, उन्नति-पथ पर एक बाधा सिद्ध हुई।

इस समस्या के कारण, बेल टेलिफोन लेबोरेटरीज़ ने फिर

स्फटिक की शरण ली। अन्वेषणकर्ताओं ने सोचा, शायद परित्यक्त स्फटिक कुछ काम आ जाए। उनका विचार ठीक ही निकला। 1948 में उन्होंने ट्रांजिस्टर के तैयार होने की घोषणा की।

उंगली के नाखून के बराबर जर्मनियम के टुकड़े ने दो तार द्विस्करों से मिलकर इलेक्ट्रॉनिक ट्यूब का काम करना शुरू कर दिया। इसमें ठंडा करने का खर्चा भी नहीं पड़ता था। ट्रांजिस्टर का जीवन 70,000 घंटे का है जो वैक्यूम ट्यूब के जीवन से तिगुना है। और फिर ट्रांजिस्टर ज्यादा टिकाऊ और गंठा हुआ था।

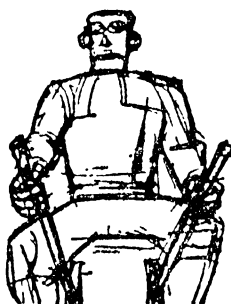
ट्रांजिस्टर, वैक्यूम ट्यूब के ही सिद्धान्तों पर आधारित है। एक औसतन संकेत को बढ़ा करने के लिए एक ट्रांजिस्टर को वैक्यूम ट्यूब में खर्च होनेवाली विद्युत्-शक्ति का केवल दस लाखवां भाग खर्च करना होता है। ट्रांजिस्टर के आगमन से विशाल यंत्र-मस्तिष्क मशीन के आकार को इतना छोटा बना दिया गया, मानो घर को एक सूटकेस में बदल दिया गया हो। अलमारी की फाइल रखने की 1,600 दराजों की सूचना का अब तीन घनफुट जगह में रखा जा सकता था।

गणना में इतनी क्षमता के साथ छोटी साइज के इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क ने पिछले चन्द सालों में दफ्तर के काम को 10 हजार गुना तेज कर दिया है। वास्तव में, इलेक्ट्रॉनिक यंत्र-मस्तिष्क अब नित्यक्रम के सभी काम संभालने के लिए तैयार है। ये मशीनें बण्डल आगे बढ़ाती हैं, सौफा-सुलफ उठाकर बन्द करती हैं, दाम संभालती हैं, पुस्तकालयों के लिए पुस्तकें चुनती हैं और व्यस्त प्रशासकों के सचिवों की हैसियत से काम कर सकती हैं।

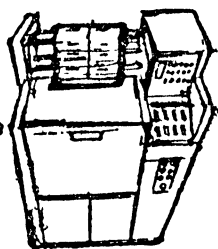
तारों के गुच्छोंवाले इस यंत्र-मस्तिष्क के भीतर जादू भरा पड़ा है। जितने समय में एक मनुष्य केवल एक संख्या लिख सकता है, यह छोटी-सी मशीन उतने समय में बड़ी-बड़ी 16 संख्याओं का गुणा कर सकती है, इस उत्तर का वर्ग बना सकती है, एक इंच वर्ग के बिन्दुओं पर आंकड़ों की मेज से जो पूछना हो, पूछ सकती है, उसी मेज से उचित अंक चुन सकती है और अंतिम हिसाब में इसे जोड़ सकती है।



यंत्रचालित शतरंज का खिलाड़ी



यंत्रमानव



संगणक

19. ज्ञान-यंत्र

बाद में यह देखा गया कि उसी विशेष नली के बही 1 तथा 0 प्रतीक तर्क की नई भाषा के लिए प्रतीकों का काम दे सकते हैं, क्योंकि मशीन 1 तथा 0 के स्थान पर 'हां' तथा 'नहीं' का प्रयोग कर सकती है और 'नहीं' को भी इस तरह जोड़ सकती है जिसका अर्थ हो 'हां'। इसी तर्क के अनुसार 'तथा' और 'अथवा' उपयोगी प्रतीक सिद्ध हुए। इलेक्ट्रॉनिक बुद्धि ने तर्क-संगत लक्ष्य की ओर सर्वोत्तम चाल चुनने का कौशल प्राप्त कर लिया था।

बिजली की दृष्टि से ये प्रतीक, चारतत्त्ववाली नली में सभी प्रकार के उपयोगों में काम आ सकते थे। ऐसी नली में दो जालियाँ लगी होती हैं जो 'फाटकों' का काम करती हैं। बिजली की धारा तभी बहती है जब दोनों अन्दर आनेवाले संकेत द्वारा पाज़िटिव किए जाते हैं। यह तथ्य कि विद्युत्-धारा दोनों जालियों से बहती है, 'तथा' में अनूदित किया जा सकता है।

इन्हीं स्रोतों द्वारा बाहरी सर्किटों को इस ढंग से रखा जा सकता है कि दोनों स्रोतों में से किसी एक से आ रहे संकेत से नली बिजली प्रवाहित करने लगेगी। यह व्यवस्था 'अथवा' का विचार-वाहन करती है। इस तरह मशीनी बुद्धि, निर्णय करने के

बोध के लिए तारों की एक व्यवस्था का उपयोग करने लग गई ।

हम एक ऐसी मशीन में इस निर्णय-शक्ति का इसी तरह का उपयोग होते देखते हैं जो शतरंज खेल सकती है । गणक मशीन की बुद्धि, हर स्थिति के लिए छः चालों में से कोई भी चाल चल सकती है । कुल मिलाकर यह चन्द हजार विभिन्न खेलें खेल सकती है । यह पहले एक चाल चलती है और फिर देखती है कि इसके सामने बैठा प्रतिद्वन्द्वी मनुष्य इसका क्या उत्तर देता है । यह अपने प्रतिद्वन्द्वी की चाल के विरुद्ध छः सम्भावित चालें सोचेगी । इस मशीन द्वारा चुने हुए खेल को स्वयं छापने से पहले तक, विपक्षी की दूसरी सम्भावित चाल के सम्बन्ध में यही लम्बी प्रक्रिया जारी रहती है ।

ये सभी सम्भव चालें मशीनी गणक द्वारा 'मानसिक रूप से' १५ सेकण्डों में खेली जाती हैं ।

परन्तु इससे भी अधिक विलक्षण बात यह है कि यह मशीन अपने अनुभवों से सीखती भी है । यह अपनी स्मृति में वे चालें इकट्ठी कर सकती है जिनके कारण हार होती है और फिर इन चालों से दूर रहना सीखती है । इस तरह वह हर खेल में उन्नति करती जाती है । शतरंज का मशीनी खिलाड़ी इतना कुशल हो गया है कि शायद केवल चैम्पियन खिलाड़ी ही उसे मात देने लायक हो सके ।

अब ऐसी मशीनी बुद्धियां बनाई जा रही हैं, जो इनसे भी अधिक पेचीदा समस्याओं से निबट सकेंगी । 'आशबी होमियोस्टेट' नामक मशीन एक ऐसी अद्भुत बुद्धि मशीन है जो वातावरण में परिवर्तन और इसके अपने भीतरी ढांचे में परिवर्तन के बावजूद अपना लक्ष्य पूरा कर देती है ।

यह बिना निर्देशन के अपना सारा काम करती है । इसमें काम करने की 3,90,625 सम्भव व्यवस्थाएं अथवा विकल्प होते हैं । जैसे कोई पशु सीखता है, उसी तरह परख तथा गलतियों द्वारा यह मशीन अपने लक्ष्य की ओर छोटे-से छोटा सम्भव मार्ग ढूंढ़ती है । इसी मशीन की रचना में उलटी दिशा को ले जानेवाले

अनुरोध भी मौजूद होते हैं, परन्तु यह उनमें से चुनाव करती है और अपने अन्तिम निर्णय पर ऐसी दृढ़ता से जम जाती है जैसे कोई विवेकपूर्ण व्यक्ति करता है। यदि इसकी बुद्धि के कुछ तार विकल भी दिए जाएं जिससे मशीन कुछ खराब भी हो जाए, तो भी इसकी बुद्धि अपने लक्ष्य की ओर सही मार्ग अपनाएगी। यह अपनी कृत्रिम बुद्धि में विरोधी विकारों में से संतुलन का बिन्दु ढूँढ़ लेती है।

चूँकि यह मशीनी बुद्धि, विवेक के ऐसे चमत्कार दिखाने के योग्य हो गई है कि अब वैज्ञानिक नये सिरे से मानव-बुद्धि का अध्ययन करने लग गए हैं। वे सोचते हैं कि शायद मानव-बुद्धि, मशीनी बुद्धि से इतनी भिन्न ही न हो।

इस सिद्धान्त के आधार पर, एक नया इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क बनाया जा रहा है।

यह नई मशीन वर्णमाला के अक्षरों तथा सरल शब्दों जैसे आकारों की जांच-पड़ताल करेगी। इस दृष्टिगत सूचना का विश्लेषण करने तथा इसे आत्मसात करने के बाद, यह एक लाउड-स्पीकर द्वारा उसकी घोषणा करेगी जो उसने देखा है। वह इतनी ही रफ्तार तथा विशुद्धता से अपने कथन का उच्चारण करेगी जैसे कि एक काफी समझदार व्यक्ति करता है।

उदाहरण के लिए, यह अंग्रेजी के 'O' तथा 'Q' अक्षरों में अन्तर करना सीख जाएगी। अतिरिक्त सर्किटों का बार-बार उपयोग करने से परख तथा गलतियों द्वारा 'O' के मुकाबले में 'Q' की पूँछ का अन्तर जान जाएगी। तब इलेक्ट्रॉनिक गणक परीक्षक को बता सकेंगे कि मशीन को निर्णय करने में कितना समय लगेगा और इसके द्वारा व्यक्त किए गए विचार में इलेक्ट्रॉनिक शक्ति कितनी होगी। इसका अन्तिम निर्देशन तो बिना गलती के होगा। यह यंत्र-मानव, उत्तरोत्तर मानव के समान बनता जाएगा।



20. नए युग के लिए नई शक्ति

मध्यकाल में, कीमियागरों के सिर पर एक जादू-भरे तत्त्व, जिसे वे पारस कहते थे, की खोज का भूत सवार था। उनका विश्वास था कि प्रकृति की कोख में एक ऐसा तत्त्व छिपा पड़ा है जिसमें अलौकिक शक्ति है। यह सभी रोगों का इलाज कर सकेगा, मूर्खों को समझदार बना देगा, सीसे को सोने में बदल देगा, और मृत व्यक्ति तक को जीवित कर देगा।

इस तत्त्व की खोज में वे हर सम्भव प्रकार के मिश्रण को उबालते और उसका अर्क निकालते रहते। उनके उपकरण दिन-प्रतिदिन बढ़ते गए—बोतलें, टोंटीदार गिलास, गैस बनाने या अर्क खींचने के बर्तन, कुठाली, छलनी, फिल्टर, खरल तथा मूसल आदि। वास्तव में, यही कीमियागर बाद में रसायन-शास्त्री बन गए जिन्होंने कई उपयोगी वस्तुओं का पता लगाया और पारस पाने के सपने तजकर ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ कर दिया।

क्यूरी दंपती, पेरिस के सार्वजनिक स्थान में प्रयोग करते हुए उस रहस्यमयी किरण को देखकर उत्तेजित हो उठे जो एक युरेनियम धौगिक से निकल रही थी। उसी किरण का पता लगाने के लिए उन्होंने कीमियागरों जैसे तरीके अपनाए। उन किरणों ने बड़ी सावधानी से फोटोग्राफी की प्लेटों को ढक लिया था और त्वचा में घुसकर हड्डियों को प्रत्यक्ष कर दिया था। उन्होंने आठ टन

पिचब्लैण्ड जिसे उन्होंने चेकोस्लोवाकिया से मंगवाया था, का उबाला और उसका आसवन किया तथा उसमें से आधा चम्मच सफेद नमक जैसा चूर्ण निकाला जो अंधेरे में चमकता था। इसे वे चमकीला तत्त्व या रेडियम कहते थे। रेडियम की खोज से संसार के वैज्ञानिकों को सख्त धक्का लगा। इस तत्त्व का व्यवहार ऐसा था जो रसायनशास्त्र तथा भौतिकशास्त्र के सभी नियमों के विपरीत था। यह बराबर निकलता रहता था और अपने-आपको नष्ट किए बिना तीन प्रकार की किरणें फेंकता रहता था। इसकी यह शक्ति कहां से आती है? क्या यही 'पारस' तो नहीं है?

इन किरणों का विश्लेषण करने के बाद इन्हें अल्फा और बीटा कण और गामा तरंगों की संज्ञा दी गई। अल्फा कण, पाज़िटिव इलेक्ट्रॉन थे और बन्दूक से निकली गोली की तरह एक सेकण्ड में 12,000 मील की रफ्तार से छूटते थे। बीटा कणों से पता लगा कि वे निगेटिव इलेक्ट्रॉन हैं, जो 1,80,000 मील प्रति-सेकण्ड की गति से छूटते हैं। गामा किरणें, एक्सरे से भी अधिक गहरी घुसती हैं।

स्पष्ट हो गया कि परमाणु, पदार्थ का सबसे छोटा कण नहीं, और न ही वह रूप में विलियर्ड की गेंद जैसा है।

अन्त में, परमाणु का एक नया चित्र सामने आया जो सौर-मण्डल के अधिक समान है। प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन के कण परमाणु के केन्द्र में एक नाभि की तरह सिकुड़े होते हैं और इलेक्ट्रॉन बाह्य स्थितियों को भरते थे। परमाणु अपने अन्दर कणों की संख्या के हिसाब से एक-दूसरे से भिन्न हैं। हाइड्रोजन सबसे हल्की होती है। इसकी नाभि में एक प्रोटॉन होता है। सबसे भारी प्राकृतिक तत्त्व में 90 प्रोटॉन होते हैं।

सूक्ष्म माप द्वारा पता लगा है कि वही तत्त्व विभिन्न परमाणु-विक वजन रखता है। यह वजन, नाभि में सारे प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन के जोड़ से बनता है। उदाहरण के लिए युरेनियम का वजन 142, 143 और 146 होता है। विभिन्न परमाणु-विक वजन के साथ उसी तत्त्व के इन विभिन्न रूपों को आइसोटोप कहते हैं।

इस चित्र से वैज्ञानिक बड़े चक्कर में पड़ गए। उन्होंने अल्फा कणों का निरीक्षण करने से हेलियम नामक एक और तत्त्व खोज निकाला। रेडियम एक दूसरा तत्त्व उत्पन्न करने लगा था। इस तरह एक तत्त्व दूसरे में बदल जाता था। यही तो वह सपना था जो कीमियागर देखते आ रहे थे, अर्थात् सीसे को सोने में बदल देने की सम्भावना।

यह चित्र तब तक वैज्ञानिकों को परेशान करता रहा जब तक आइंस्टाइन ने अपने साहसपूर्ण सिद्धान्त द्वारा इसके महत्त्व की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित नहीं किया। उन्होंने लिखा : “हम कल्पना कर सकते हैं कि एक सारे पिण्ड को शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है।” यह सिद्धान्त, मूलगत रूप से ब्रह्माण्ड की एक नई कल्पना थी और वे इसे गणित-सम्बन्धी सिद्धान्त से सिद्ध करते थे। यह सिद्धान्त है : $E=mc^2$, अर्थात् शक्ति (E) की मात्रा पिण्ड (m) तथा प्रकाश की निरन्तर गति के वर्ग (c²) के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में पिण्ड तथा शक्ति ठीक गणितीय सम्बन्धों में एक-दूसरे में बदले जा सकते हैं।

ब्रह्माण्ड के एक नये रूप का आविर्भाव हुआ। सूर्य पदार्थ को जलाकर ताप तथा प्रकाश में बदल रहा था और तरंगें फँक रहा था। इसी तरह से पृथ्वी पर जो भारी तत्त्व हैं (परमाणविक संख्या 81 से 102 तक) वे भी, रेडियोधर्मिता की प्राकृतिक प्रक्रिया से अपने पिण्ड को शक्ति में बदल रहे हैं। भारी तत्त्व वास्तव में, अपने-आपको हल्के तथा सादे तत्त्वों में बदल रहे हैं। युरेनियम को, अपने पिण्ड के आधे भाग को रेडियम में बदलने में 4,67,00,00,000 वर्ष लगे। इसका भी पता लगा कि रेडियम को अपने आधे पिण्ड को सीसे में बदलने में 1,690 वर्ष लगेंगे।

यह परिवर्तन तभी से चल रहा है जबसे यह संसार बना है। वे कीमियागर आखिर कोई मूर्ख थोड़े ही थे ! किसी जादू-भरे तत्त्व का अस्तित्व तो अवश्य था। परन्तु बाद में पता लगा कि वह तत्त्व परमाणु की कोख में बन्द पड़ा है।



21. पिण्ड का शक्ति में परिवर्तन

पहले यह बात किसी भी व्यक्ति के ख्याल में नहीं आई कि इस सोए पड़े देव की शक्ति को मुक्त किया जा सकता है। इस काम में बाधाएं भी अनेक थीं। सबसे पहली बाधा यह थी कि परमाणु अधिकतर शून्य थे। उनके सूक्ष्म आकार ने एक परमाणु में अलग-अलग कणों को एक-दूसरे से इतना दूर कर रखा था जितने आकाश के नक्षत्र एक-दूसरे से दूर हैं।

इतने सूक्ष्म हैं वे कण कि यदि २५ हाइड्रोजन परमाणुओं को एक पंक्ति में रखें तो एक इंच लंबी पंक्ति बनेगी। और उनसे भी सूक्ष्म 2,00,000 इलेक्ट्रॉन को इसी तरह रखें तो वे एक हाइड्रोजन परमाणु के बराबर-बराबर होंगे। और सबसे अधिक सूक्ष्म 18,000 प्रोटॉन को इस तरह रखा जाए तो एक इलेक्ट्रॉन की चौड़ाई के बराबर होंगे।

उदाहरण के लिए, हाइड्रोजन परमाणु के सही चित्र से पता लगेगा कि एक प्रोटॉन दस मील व्यास की एक परिधि के केन्द्र में 10 इंच का एक गुब्बारा है। कल्पना कीजिए, परिधि के किनारे पर ५ मील दूर, संगमरमर का एक छोटा-सा कण 1,350 मील प्रतिसेकण्ड की गति से घूम रहा है। शेष सब शून्य आकाश है।

इससे भी अधिक कठिनाई यों पड़ती है कि परमाणुओं के बाह्य (न्यूक्लीअस) जबर्दस्त शक्ति से एक-दूसरे को विकर्षित

करते हैं। यदि इस नाभिक का एक ग्राम भाग उत्तरी ध्रुव पर रखा जाए और दूसरे ग्राम को दक्षिणी ध्रुव पर, तब भी वे २६ टन की शक्ति से एक-दूसरे को विकर्षित करेंगे।

ये थीं वे भारी बाधाएं जिन्हें बर्ण करना आवश्यक था ताकि एक उड़ता हुआ कण एक नाभिक में घुस सके और दैवयोग से एक दूसरे उड़ते कण से जा टकराए। ऐसे दस लाख उड़ते कणों में से केवल एक कण कहीं अपने लक्ष्य को पहुंच पाता है। इसे इस तरह समझ लीजिए कि भिर्च के एक दाने को हवा में फेंका जाए और इसे नमक के एक कण से चोट करने का यत्न किया जाए।

फिर भी, एक भौतिक-शास्त्री ने इस चुनौती को स्वीकार किया। उसने रेडियम के एक सूक्ष्म कण को नाइट्रोजन गैस से भरी नली में डाला। फिर उसने एक प्रतिदीप्त जाली को उस नली से इतना दूर रखा कि रेडियम से छूट रहे अल्फा कण (12,000 मील प्रतिसेकण्ड की गति से) इस तक न पहुंच सकें। एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से उसने जाली की दूसरी ओर का अध्ययन किया। उसने देख लिया कि इसपर प्रकाश के बिन्दु चमक रहे हैं।

वहां यह क्या हो रहा था? इसकी एक ही व्याख्या हो सकती है। रेडियम के अल्फा कण नाइट्रोजन नाभिक में घुस गए थे और उन प्रोटॉनों को उड़ा रहे थे जो प्रकाश की चमक में प्रतिदीप्त जाली पर टकरा रहे थे।

उसने पता लगा लिया कि उसकी नली में नाइट्रोजन का एक अंश, आक्सीजन में बदल गया है। वह पहला व्यक्ति था जो एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में परिवर्तित करने में सफल हुआ था। कीमियागरों का युगों पुराना सपना सच हो गया। एक परमाणु की शक्ति खींचने के लिए एक प्रोटॉन को इसके नाभिक से केवल तोड़ना जरूरी रह गया था। ज्योंही परमाणु एक दूसरे तत्त्व में परिवर्तित होता, वह उसी समय ढेर सारी शक्ति को मुक्त कर सकता था।

परमाणु विपाटक

फिर हुआ परमाणु विपाटकों का आविष्कार ! जो अल्फा कण अपने-आप रेडियम से छूटते थे, उनमें प्रहार करने की असली शक्ति नहीं थी । नाभिक के दुर्ग को तोड़ गिराने के लिए बम-बारी की एक नई मशीन का आविष्कार आवश्यक था । ऐसी मशीन की जरूरत थी जो ऐसी किरणें उत्पन्न कर सके, जो रेडियम की किरणों से हजारों गुना अधिक तीव्र हों । परमाणुविच्छेदकों की बाढ़ को तेज करने के लिए यांत्रिक मानव की सहायता मांगी गई ।

तीव्र गति को और तेज करने के लिए एक नई विधि निकाली गई जिससे सदा उच्च वोल्टेज उत्पन्न होती थी । सबसे अधिक विख्यात विधि थी साइक्लोट्रॉन की जो अर्नेस्ट ओ० लारेंस ने १९३१ में निकाली थी । उसने उसी सिद्धान्त द्वारा कणों की गति तेज करने का विचार किया जो विद्युत्-उत्पादन मोटर में प्रयुक्त होता है । बिजली द्वारा एक जैसे ही ध्रुव विकर्षण से कणों के पास 'ठोकर मारने' की अतिरिक्त शक्ति आ जाती है । एक विपक्षी ध्रुव का आकर्षण इसे आगे की ओर भटका देगा । प्रति-सेकण्ड २ करोड़ बार की गति से इन ठोकरों तथा भटकों से अत्यधिक गति प्राप्त हो जाती थी ।

लारेंस उस समय संसार के सबसे बड़े चुम्बक (८५ टन) को चुम्बकीय क्षेत्र के लिए उपयोग में लाया । अब वोल्टेज की संख्या खरबों तक पहुँच गई थी । चाडविक ने अल्फा कणों द्वारा बेरिलियम की बमबारी करके गति और बढ़ा दी । एक नया कण मुक्त कर दिया गया था । न्यूट्रॉन ने एक नये प्रकार की बमबारी को सम्भव बना दिया था ।

नाभिक का विदारण

अभी तक केन्द्रकीय पिण्ड की केवल चिप्पियों को ही उखाड़ा गया था । जब इस बात का पता लगा कि उसी तत्त्व के वजन का अन्तर, परमाणु में न्यूट्रॉन की संख्या पर आधारित होता है

तो विचार का रुख नई दिशा की ओर मुड़ गया । 1933 में एन्रिको फर्मी ने पता लगाया कि पैराफोन में से न्यूट्रॉन गुजारने से उनकी गति धीमी की जा सकती है और वे परमाणुओं के नाभिकों द्वारा पकड़े जा सकते हैं । उसने ४० विभिन्न तत्त्वों पर प्रयोग किया । जब तक उसने युरेनियम पर बमबारी नहीं की तब तक कुछ भी नहीं हुआ था । धरती में खनिज पदार्थ के रूप में पाई गई युरेनियम धातु का ९९ प्रतिशत अंश २३८ परमाणुविक वजन रखता है । इस खनिज पदार्थ का करीब 1 प्रतिशत युरेनियम का एक आइसोटोप होता है जिसका वजन २३५ होता है । जब युरेनियम २३५ पर न्यूट्रॉन की बमबारी की गई तो एक विचित्र परिणाम का पता लगा । न्यूट्रॉन पकड़ने के बजाय युरेनियम परमाणु दो दूसरे तत्त्वों के परमाणुओं में फट गया । जो शक्ति इससे उत्पन्न हुई वह बहुत ही ज्यादा थी । वह शक्ति तब तक केन्द्रकीय विपाटन द्वारा प्राप्त शक्ति का 100 गुनी थी । परमाणुविक बमबारी के इन वर्षों में पहली बार स्फूर्तिदायक सम्भावना का पता लगा ।

एक ग्राम युरेनियम 235,89,87,40,411 (तथा 12 जीरो) अर्ज शक्ति मुक्त करता है । एक सेकण्ड के 1/10 करोड़वें भाग में न्यूट्रॉन की 60 पीढ़ियां एक परमाणु बम में फट सकती हैं ।

चूँकि जर्मनी पहले से ही इसी प्रश्न पर पहुँच चुका था, इस बात पर अमरीका के राष्ट्रपति को विचार करना पड़ा । फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट के नाम, आइंस्टाइन के पत्र द्वारा इस प्रबल सिद्धान्त की परीक्षा करने के लिए धन मिल गया ।

परमाणु बम

शिकागो विश्वविद्यालय के स्टेडियम के नीचे एक अत्यन्त गोपनीय प्रयोगशाला स्थापित की गई । न्यूट्रान बमबारी को रोकने के लिए काले सीसे की छड़ें युरेनियम पिण्डों के बीच डाली गईं । इन छड़ों को धीरे-धीरे उठाया गया । प्रतिक्रिया का एक लय चल निकला । विस्फोट के क्षण तक पहुँचने की आवश्यकता

नहीं थी। परीक्षण सफल हुआ। 2 दिसम्बर, 1942 को एक राक्षस को मुक्त करने के ढंग का पता लग गया। परमाणु शक्ति का यह पहला सतत नियन्त्रित उत्पादन था।

तीन वर्ष बाद, कई खरब डालर खर्च करके परमाणु बम वास्तविक अर्थों में अस्तित्व में आया। एक सौ पौण्ड युरेनियम 235, 20,000 पौण्ड टी० एन० टी० अथवा 400 खरब पौण्ड कोयले की शक्ति के बराबर था।

अत्यन्त कठिन समस्या थी यू-235 के उत्पादन की। युरेनियम से प्राप्त 140 परमाणुओं में से केवल एक परमाणु में जादू-भरे 235 प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन होते हैं। खनिज युरेनियम में से युरेनियम के आइसोटोप अलग करने के लिए विशाल कारखाने खड़े करने की आवश्यकता थी। ओकरिज में हजारों पम्प चलाने के लिए इतनी बिजली की जरूरत थी जो सारे न्यूयार्क शहर के लिए काफी होती। अन्त में संकटपूर्ण यू-235 अनभीष्ट यू-238 से अलग किया गया।

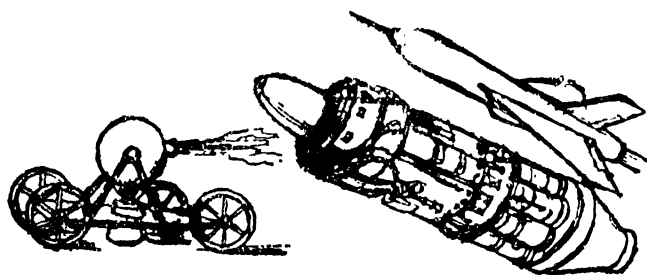
उस समय तक यांत्रिक मानव की आंखें तैयार हो चुकी थीं, हाथ और बुद्धि बन गई थी जो रेडियम से हजार गुना अधिक घातक शक्ति का प्रयोग कर सकती थी। वह अपनी बांहें जिस कोण में चाहता था घुमा सकता था। रबर के दस्ताने में उसके मशीनी हाथ की उंगलियां वस्तु पकड़ सकती थीं, उसे उलट-पुलट सकती थीं, धकेल सकती थीं, बोतल में कार्क लगा सकती थीं और कार्क खोल सकती थीं, निचोड़, उठा और धर सकती थीं, और उस व्यक्ति के इशारों तथा आदेशों को मान सकती थीं जो सुरक्षित कक्ष में बैठा सारे काम देख रहा होता। यांत्रिक मानव के दस फुट लंबे उस हाथ ने, जो विकिरण के प्रभाव से मुक्त था, परमाणु शक्ति को हाथ में लेना सम्भव बना दिया।

16 जुलाई, 1945 को पहला परमाणु बम छोड़ा गया। इसकी हस्ता की मीनार भाप बनकर उड़ गई और आस-पास की रेत पिघलकर 800 गज के अर्धव्यास की परिधि में कांच बन गई। तीन सप्ताह बाद, एक परमाणु बम ने 3,43,000

की आबादी वाले शहर के ठीक बीच में 4 वर्गमील के स्थान को समतल बना दिया। इसमें 66,000 व्यक्ति मारे गए और 70,000 बेघर हुए। इमारतों का 70 प्रतिशत भाग धराशायी हो गया।

युद्ध के बाद पहला कदम था, युरेनियम जैसी विरल धातु के स्थान पर हाइड्रोजन जैसे एक साधारण तत्व के उपयोग से अधिक शक्तिशाली बम बनाना। हाइड्रोजन बम का मूल सिद्धांत था गलन, जिसमें हल्के तत्व के नाभिक पिघलकर भारी नाभिक बन जाते हैं और इस तरह एक तत्व के दूसरे में परिवर्तित होने से हाइड्रोजन बम की अत्यधिक विस्फोटक-शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

इस ताप-नाभिकीय गलन के लिए सूर्य के तापमान की आवश्यकता होती है। एक परमाणु बम के विस्फोट द्वारा चार हाइड्रोजन परमाणुओं को एक सेकण्ड के एक अंश में उन्मत्त गतिविधि में प्रविष्ट कराया गया। वे एक हेलियम परमाणु के नाभिक में पिघल गए। इसकी उपोत्पत्ति की उस शक्ति का विस्फोट, जिसके कारण प्रशान्त महासागर में एक द्वीप ही गायब हो गया और इसके स्थान पर एक ऐसा गड्ढा बन गया था जो 175 फुट गहरा और 1 मील चौड़ा था। हाइड्रोजन बम में इतनी शक्ति होती है जो विस्फोट द्वारा 150 वर्गमील के क्षेत्र को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है और 800 वर्गमील में जलाने-वाली गर्मी भर देती है।



डूटन की भापगाड़ी और आधुनिक जेट विमान

22. अन्तरिक्ष में इंजन

क्या हाइड्रोजन बम में ही मानव तथा मशीन की कहानी का अन्त हो जाता है ? क्या यांत्रिक मानव ने मानव-जाति को मौत के जाल में फंसा दिया है ? कई समझदार व्यक्ति यह कह चुके हैं कि मशीन शैतान की ईजाद की हुई वस्तु है । परन्तु यह कहानी यहीं समाप्त नहीं होती । विनाश तथा सभ्यता की इस दौड़ में सहसा एक नई दिशा दिखने लगी है । इस सिलसिले में औद्योगिक आविष्कार की इस कहानी में एक छोटी-सी कथा का जिक्र करना जरूरी है । वह है अन्तरिक्ष में इंजन की कथा ।

अन्तर्दहन इंजन के कारण यांत्रिक मानव को इतनी तीव्रगति प्राप्त हुई कि इसने मोटरगाड़ी के पहियों को घुमाने के तुरन्त बाद एक वायुयान के पंखों को घुमाना आरम्भ कर दिया ।

राइट-बन्धुओं ने केवल यह जानने के लिए कि उड़ान के समय पंखों पर नियंत्रण कैसे रखा जाए, किट्टीहॉक के रेत के टीलों पर ग्लाइडरों (बिना इंजन के विमानों) द्वारा उड़ान करके प्रयोग किया । उन्होंने, ओहियो के शहर डेटन में अपनी बाइसिकल शाप के पिछवाड़े एक वायुसुरंग में एक माडल-विमान का अध्ययन तब तक जारी रखा जब तक कि वे पंखों को चलाने के कुछ मूलगत सिद्धांतों के कायल नहीं हो गए । जब उन्होंने गैसोलिन इंजन जोड़ा तो उनका विचार था कि पंखों के नीचे वायुमंडलीय दबाव

के बढ़ जाने से विमान ऊपर उठ सकेगा । यदि रफ्तार दुगुनी कर दी जाए, तो ऊपर उठने की शक्ति चौगुनी हो जाएगी ।

इस तथ्य ने कि वायु से अधिक भारी मशीन, वायु में एक मिनट में 850 फुट ऊपर उठ सकती है, राइट-बंधुओं के गणित-सम्बन्धी विचार को सही सिद्ध कर दिया ।

एक बार हवा में उड़कर विमान ने इतनी तेज उन्नति की जितनी किसी भी अन्य यंत्र ने नहीं की थी । इसका डिज़ाइन और आकार उत्तरोत्तर सुन्दर होता गया । मोड़ने-घुमाने की क्षमता के लिए 'एइलेरान' जोड़े गए । ऊपर उठने में अधिक सुविधा के लिए पल्ले जोड़े गए । धरती पर उतरते समय इन्हीं पल्लों से ब्रेकों का काम लिया गया । विमान की शुथनी पीछे दुम में लगे 'एलिवेटर्स' को नियंत्रित करने से ऊपर-नीचे की जा सकती थी । वायु को 'चीरने' की शक्ति को बढ़ाने के लिए पंखों का साइज़ ध्यान से तैयार किया जाता था ।

चन्द साल के अन्दर-अन्दर प्रमुख राष्ट्रों ने 1500 सैनिक विमान तैयार किए, जो १२५ मील प्रतिघंटा की रफ्तार से उड़ते थे । प्रतिवर्ष विमान ज्यादा ऊंचाई पर ज्यादा रफ्तार से उड़ने लगे । वे सागरों को बड़े कौतुकपूर्ण उड़ानों द्वारा पार करने लगे और पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाने लगे । ज़िरास्कोपों ने, जो सदा उत्तर की ओर संकेत करते हैं और जिनपर चुम्बकीय गड़बड़ और आंधी के थपेड़ों का कोई असर नहीं होता, विमानों को अपनी नियत राह पर कायम रहने में सहायता दी । और फिर अब विमानचालक शीघ्र ही रेडियो द्वारा संकेत पाकर भट-से नीचे पृथ्वी पर उतर सकता है ।

1939 तक तो अतलांतिक सागर के आर-पार सवारियां लाने-ले जाने की सेवा आरम्भ हो चुकी थी और व्यापारी विमान तब तक 20 लाख यात्री ढो चुके थे ।

लक्ष्य सदा यही रहा है कि विमान का वजन इसकी अधिक बढ़ती हुई शक्ति की मात्रा के अनुपात से घटाया जाए । हल्के और प्रबल धातु-मिश्रण ने, इंजन के वजन के प्रत्येक पाँड के

पीछे एक अश्वबल बढ़ाना सम्भव कर दिया । फिर सतत लक्ष्य बन गया रफ्तार की उत्तरोत्तर वृद्धि । द्वितीय विश्वयुद्ध तक 2000 अश्वबल के इंजन एक मिनट में एक मील उड़ सकते थे ।

युद्ध के दौरान, विमान आकार में बड़े होते गए । इनके पंखों का फैलाव 230 फुट हो गया । पहिए ५ फुट के और अन्दर से खोखले इस्पात के पंख 20 फुट के बनाए गए । 3000 अश्वबल के इंजन, एक रेलगाड़ी खींचने की शक्ति रखनेवाले डीजल इंजनों जैसे प्रबल हो गए थे और 300 मील प्रतिघंटा की रफ्तार से उड़ने लगे थे और चौमंजिले रेडार द्वारा नियंत्रित हो रहे थे ।

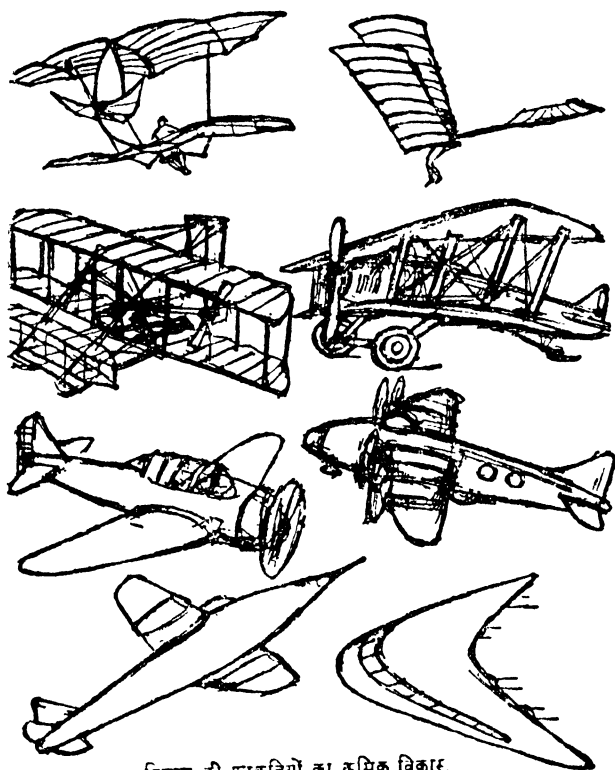
परन्तु शक्ति का यह सारा ज्वार उस समय समाप्त हो गया जब विमान आकाश में 20,000 फुट की ऊंचाई पर पहुंचा । यहां पंखों का कम वायु पर काबू खत्म हो गया । विमान की रफ्तार तथा वाहक-शक्ति खत्म होने लगी । उन पंखों की सहायता से प्रतिघंटा 400 मील की गति अन्तिम सीमा बन गई ।

कम वायु की सीमाओं पर काबू पाने के लिए एक टर्बोसुपर चार्जर इंजन तैयार हुआ, जिसकी मदद से पंख बहुत ऊंचाई पर भी चलते थे और इस तरह सैनिक विमान उस ऊंचाई से बम गिरा सकते थे जहां तक विमानवेधी तोपों के गोले पहुंच ही नहीं सकते थे ।

जेट विमान

फिर भी 'टर्बोप्राप' इंजन वायुयान की समस्या का अन्तिम समाधान नहीं था । अन्तरिक्ष का आकर्षण तथा शत्रु को पराजित करने की सैनिक आवश्यकता ने मनुष्य को और ऊंचा तथा अधिक तेज उड़ने को विवश कर दिया ।

अपनी 22 वर्ष की आयु में इंग्लैण्ड में फ्रैंक व्हिटल ने भविष्य-वाणी की कि भविष्य में वायुयान उस फैलती गैस की शक्ति द्वारा उड़ा करेंगे जो पिछवाड़े में लगी नली से छूट रही होगी । उन्होंने दावा किया कि विमानों की गति इसके पंखों के सिरों को स्वयं विमान की अपेक्षा अधिक तेज चलने की आवश्यकता द्वारा सीमित होती है । पंखों की कम होती जा रही क्षमता के विरुद्ध एक यही हल



विमान की आकृतियों का क्रमिक विकास.

था कि पंखों को सिरे से हटा ही दिया जाए। केवल जेट प्रक्षेपण द्वारा ही इतनी अधिक गति प्राप्त की जा सकती थी जो पंखों की क्षमता से बाहर थी।

व्हिटल ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह नये प्रकार का इंजन बनाया। इसमें गैसोलिन इंजन की अपेक्षा चलनेवाले पुर्जों का दसवां भाग था। यह इंजन इतना सादा था कि इसे 15 मिनटों में जमाया और निकाला जा सकता था।

जेट का धातु का बना ढांचा शुण्डाकार था जिसमें हवा के प्रवेश के लिए अगले भाग के अन्तिम अंश में छेद था। वह शुण्ड

पिछवाड़े हवा के निकलने की टोंटी की ओर नुकीला बनता चला गया था । शुण्ड के मध्य भाग में अग्नि-कक्ष था जिसमें घुनी वायु तथा ईंधन को दबाव के बल से डाला जाता था । जब गैसें जलती थीं तो वे फैलती थीं और सिवाय पिछले भाग के कक्ष पर दबाव डालती थीं । पिछले भाग से गैसें निकलकर विमान को आगे बढ़ने की सतत एवं प्रबल शक्ति प्रदान करती थीं ।

पहले जेट में आगे बढ़ने की शक्ति 850 पौण्ड थी । परन्तु यह शक्ति इस प्रकार बढ़ाई जाती रही कि यह विमान को ध्वनि की गति से भी तेज करने के योग्य हो गई ; अर्थात् अब करीब 600 मील प्रतिघण्टा की रफ्तार से विमान उड़ सकता था ।

जब जेट विमान की गति, ध्वनि की गति तक पहुंच गई तो वायु पंखों के आगे एकत्र होती गई और अवरोध की दीवार-सी सिद्ध होने लगी । तब पंखों का नया डिजाइन बनाना पड़ा । जब यह कठिनाई दूर हो गई तो विमान की गति 2,000 मील प्रति-घण्टा हो गई । ज्यों-ज्यों गति बढ़ती थी, रगड़ में भी वृद्धि होती थी और ताप भी बढ़ता जाता था, जिससे विमान की धातु का टिकना कठिन हो गया, इसलिए ताप-प्रतिरोधक धातु तैयार की गई । विशेष प्रकार के केबिन बनाए गए जो टनों भीतरी दबाव को सहन कर सकते थे । 50,000 फुट की ऊंचाई पर कड़ाके की सर्दी सहन करने के लिए तापावरोधन तैयार किया गया ।

स्वचालित विमानचालक यंत्र

विमान की गति तथा ऊंचाई में वृद्धि बिना जिरोस्कोप की सहायता के सम्भव नहीं थी । यह एक ऐसा यंत्र था जो उस ढांचे की विभिन्न तथा प्रायः स्थायी गतियों के बावजूद, जिसपर वह स्वयं टिका होता था, अंतरिक्ष में अपनी स्थिति स्थिर रखता था ।

जब तक पस्प की गई हवा जिरोस्कोप के पहिए को घुमाती रहती है, वह दिशा में परिवर्तन का विरोध करता है । इस उपयोगी गुण के कारण वह एक अचुम्बकीय कुतुबनुमा बन जाता है जो सदा उत्तर की ओर संकेत करता है । यह वास्तविक क्षितिज

का ठीक प्रतिरूप प्रस्तुत करता है जिसमें विमानचालक को बाहर का दृश्य देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

ज्यों-ज्यों गति में वृद्धि होती गई, त्यों-त्यों विमानचालक अपने औजारों पर आश्रित होता गया । पहले-पहल विमानचालक रेडियो तथा जिरोस्कोप द्वारा सूचना प्राप्त करता था । उसे इस बात का पता लगाने के लिए कि इन दो यंत्रों को किस ओर घुमाया जाए, इन दोनों की सूचनाओं को मिलाकर हिसाब लगाने के लिए काफी माथापच्ची करनी पड़ती थी । बाद में इन दोनों यंत्रों को मिलाकर इनका एक यंत्र बनाया गया ताकि विमानचालक को बराबर यह पता लगता रहे कि उसे अपने विमान को दायें या बायें मोड़ना है और ऊपर या नीचे उड़ना है ।

बस एक कदम और बढ़ने से विमान चलाने का सारा काम स्वयं पूरा होने लगा । अब विमानचालक को केवल बटन दबाने की ही जरूरत पड़ती । स्वचालित विमानचालन यंत्र तैयार हो गया था । इस स्वचालित यंत्र द्वारा पहले विमान ने 1947 में अतलांतिक महासागर के पार उड़ान की ।

यह स्वचालित व्यवस्था इतनी उन्नति कर चुकी है कि बिना हाथ लगाए जेट विमानचालक इसे 600 मील प्रतिघंटा की रफ्तार से चला सकता है और अपेक्षाकृत प्रतिघंटा 100 मील की कम रफ्तार से इसे उतार सकता है । सारा मार्ग पहले से निश्चित होता है, गणक अपने-आप सुधार करते जाते हैं । यहां तक कि प्रत्येक उड़ान में कुछ क्षण ऐसे भी होते हैं जिनमें यदि विमानचालक वहां न भी बैठा हो तो कोई हानि नहीं होती ।

रॉकेट

द्वितीय महायुद्ध में बमबारी करनेवाले ध्वनि से तेज जेट विमान तैयार करवाए गए, जिन्हें विमानचालक की जरूरत नहीं थी । हिटलर का वी-1 एक स्वचालित जेट विमान था जिसकी युथनी में बम रखा रहता था जो यात्रा की समाप्ति पर फट जाता था ।

जब विमानचालक की आवश्यकता समाप्त हो गई तो एक

नये प्रकार का इंजन बनाया गया जिसे वी-२ की संज्ञा दी गई । यह इंजन स्वयं उस ऑक्सीजन को अपने साथ रखता जिसकी तरल ईंधन के रूप में जरूरत पड़ती थी । यह बहुत कम समय में अत्यधिक रफ्तार से चल सकता था । इसमें फैलती गैसों एक ओर ज्वलन कक्ष के सिरे के विरुद्ध आगे धकेलतीं और दूसरी ओर वातावरण के विरुद्ध । इस तरह विमान की गति तीव्रतम हो जाती थी और वह एक उड़ते हुए टैंक का रूप धारण कर लेता था ।

वी-२ रॉकेट विमानों ने दुनिया को चकित कर दिया । ईथिल अलकोहल तथा तरल ऑक्सीजन के मूलभूत इंजनों ने सैकड़ों 15 टन वजन के तथा 46 फुट लम्बे वी-2 रॉकेट, समताप मण्डल में एक सौ मील ऊंचे उड़ाए और द्वितीय महायुद्ध में उन्हें एक मील प्रतिघण्टा की रफ्तार से लन्दन में उतारा ।

वे 50 सेकण्ड में अपना सारा ईंधन खत्म कर देते थे । उस समय वे इंग्लिश चैनल पर 3500 मील प्रतिघण्टा की रफ्तार से उड़ रहे होते थे । रॉकेट के कक्ष में 3000 डिग्री के ताप के बावजूद अलकोहल के छिड़काव से धातु की दीवारें ठण्डी होती थीं । 1050 रॉकेट लन्दन में अपने निशाने पर जा लगे और 2500 को यूरोप में दूसरे निशानों पर फेंका गया । इस प्रकार एकाएक संसार के सामने धम्-से अंतरिक्ष युग आ पहुंचा ।

प्रक्षेपणास्त्र

द्वितीय महायुद्ध के बाद अधिकतर सैनिक तैयारी रॉकेट इंजन बनाने के सम्बन्ध में ही रही । सैनिक दृष्टि से भी रॉकेट इंजन परमाणु आयुध ले जाने के लिए आदर्श वाहन था ।

6000 पौण्ड धक्का देनेवाली चार विद्युत्-मोटरों से लैस बेल विमान कारपोरेशन एक्स-१ ध्वनि की गति से भी तेज उड़ने लगा । यह केवल श्रीगणेश था । प्रतिवर्ष बेल रॉकेट की गति बढ़ती गई । फिर आया एक्स-१ ए जिसके धक्के की शक्ति 75000 पौण्ड थी । इसकी गति थी 2000 मील प्रतिघण्टा । एक्स-15 नामक रॉकेट 100 मील ऊंचा, 3600 मील से अधिक प्रति-

घण्टा की रफ्तार से उड़ सकता था ।

सन् 1958 में डाइना सोर नामक बमवाहक प्रक्षेपणास्त्र बनने लगे जो 16,000 मील प्रतिघण्टा की रफ्तार प्राप्त कर लेते थे । उन्हें 8,00,000 पौण्ड धक्के से सीधा 300 मील अन्तरिक्ष में उड़ना था और सारी पृथ्वी के गिर्द ढाई घण्टे में चक्कर काटना था । यह चमकता लाल-सुर्ख प्रक्षेपणास्त्र पृथ्वी के गिर्द आधे मार्ग पर अपना बम गिरा सकता है और वातावरण के ऊपर से होता हुआ वापस लौटते रॉकेटों की सहायता से फिर अपने स्थान पर वापस आ सकता है ।

इस प्रकार के सारे के सारे रॉकेटयुक्त प्रक्षेपणास्त्रों को सुधारा जा रहा है । वे शहरों के गिर्द चक्कर लगा रहे हैं । वे पनडुब्बियों द्वारा नीचे गहरे पानी में से फेंके जा सकते हैं । अब इनमें मार्गदर्शक गणक भी लगाए गए हैं । उड़ान-नियंत्रक की इलेक्ट्रॉनिक बुद्धि पर हर सुधार अंकित हो जाता है, जिससे ज्ञात होता है कि कब इसे लक्ष्य तक पहुंचना है और कब बम को फटना है ।

प्रक्षेपणास्त्र-वेधी अस्त्र भी एक स्वचालित यन्त्र है । लक्ष्य ही इसका मार्ग-निर्देशक बन जाता है । लक्ष्य इसे इस तरह अपनी ओर आकर्षित करता है, जैसे चुम्बक लोहे को । रेडार संकेतों की परिवर्ती शक्ति इसके नियंत्रक यंत्र का काम करती है । जब यह प्रक्षेपणास्त्र अपने लक्ष्य के निकट पहुंचता है तो एक रेडियो फ्यूज विस्फोटक को दाग देती है । ये अस्त्र 15,000 मील प्रतिघण्टे की रफ्तार से अपने लक्ष्य की ओर जाते हैं ।

हमारे पास ऐसे भी प्रक्षेपणास्त्र हैं जो एक वृक्ष की ऊंचाई जितनी सतह से भी काम कर सकते हैं और नीची उड़ान द्वारा उन निशानों के विरुद्ध भी चलाए जा सकते हैं जो नीची उड़ान द्वारा रेडारों से बच निकलने का प्रयत्न करते हैं ।

नये प्रकार का इंजन बनाया गया जिसे वी-२ की संज्ञा दी गई । यह इंजन स्वयं उस ऑक्सीजन को अपने साथ रखता जिसकी तरल ईंधन के रूप में जरूरत पड़ती थी । यह बहुत कम समय में अत्यधिक रफ्तार से चल सकता था । इसमें फैलती गैसों एक ओर और ज्वलन कक्ष के सिरे के विरुद्ध आगे धकेलतीं और दूसरी ओर वातावरण के विरुद्ध । इस तरह विमान की गति तीव्रतम हो जाती थी और वह एक उड़ते हुए टैंक का रूप धारण कर लेता था ।

वी-२ रॉकेट विमानों ने दुनिया को चकित कर दिया । ईथिल अलकोहल तथा तरल ऑक्सीजन के मूलभूत इंजनों ने सैकड़ों 15 टन वजन के तथा 46 फुट लम्बे वी-2 रॉकेट, समताप मण्डल में एक सौ मील ऊंचे उड़ाए और द्वितीय महायुद्ध में उन्हें एक मील प्रतिघण्टा की रफ्तार से लन्दन में उतारा ।

वे 50 सेकण्ड में अपना सारा ईंधन खत्म कर देते थे । उस समय वे इंग्लिश चैनल पर 3500 मील प्रतिघण्टा की रफ्तार से उड़ रहे होते थे । रॉकेट के कक्ष में 3000 डिग्री के ताप के बावजूद अलकोहल के छिड़काव से धातु की दीवारें ठण्डी होती थीं । 1050 रॉकेट लन्दन में अपने निशाने पर जा लगे और 2500 को यूरोप में दूसरे निशानों पर फेंका गया । इस प्रकार एकाएक संसार के सामने धम्-से अंतरिक्ष युग आ पहुंचा ।

प्रक्षेपणास्त्र

द्वितीय महायुद्ध के बाद अधिकतर सैनिक तैयारी रॉकेट इंजन बनाने के सम्बन्ध में ही रही । सैनिक दृष्टि से भी रॉकेट इंजन परमाणु आयुध ले जाने के लिए आदर्श वाहन था ।

6000 पौण्ड धक्का देनेवाली चार विद्युत्-मोटरों से लैस बेल विमान कारपोरेशन एक्स-१ ध्वनि की गति से भी तेज उड़ने लगा । यह केवल श्रीगणेश था । प्रतिवर्ष बेल रॉकेट की गति बढ़ती गई । फिर आया एक्स-१ ए जिसके धक्के की शक्ति 75000 पौण्ड थी । इसकी गति थी 2000 मील प्रतिघण्टा । एक्स-15 नामक रॉकेट 100 मील ऊंचा, 3600 मील से अधिक प्रति-

घण्टा की रफ्तार से उड़ सकता था ।

सन् 1958 में डाइना सोर नामक बमवाहक प्रक्षेपणास्त्र बनने लगे जो 16,000 मील प्रतिघण्टा की रफ्तार प्राप्त कर लेते थे । उन्हें 8,00,000 पौण्ड धक्के से सीधा 300 मील अन्तरिक्ष में उड़ना था और सारी पृथ्वी के गिर्द ढाई घण्टे में चक्कर काटना था । यह चमकता लाल-सुर्ख प्रक्षेपणास्त्र पृथ्वी के गिर्द आधे मार्ग पर अपना बम गिरा सकता है और वातावरण के ऊपर से होता हुआ वापस लौटते रॉकेटों की सहायता से फिर अपने स्थान पर वापस आ सकता है ।

इस प्रकार के सारे के सारे रॉकेटयुक्त प्रक्षेपणास्त्रों को सुधारा जा रहा है । वे शहरों के गिर्द चक्कर लगा रहे हैं । वे पनडुब्बियों द्वारा नीचे गहरे पानी में से फेंके जा सकते हैं । अब इनमें मार्गदर्शक गणक भी लगाए गए हैं । उड़ान-नियंत्रक की इलेक्ट्रॉनिक बुद्धि पर हर सुधार अंकित हो जाता है, जिससे ज्ञात होता है कि कब इसे लक्ष्य तक पहुंचना है और कब बम को फटना है ।

प्रक्षेपणास्त्र-वेधी अस्त्र भी एक स्वचालित यन्त्र है । लक्ष्य ही इसका मार्ग-निर्देशक बन जाता है । लक्ष्य इसे इस तरह अपनी ओर आकर्षित करता है, जैसे चुम्बक लोहे को । रेडार संकेतों की परिवर्ती शक्ति इसके नियंत्रक यंत्र का काम करती है । जब यह प्रक्षेपणास्त्र अपने लक्ष्य के निकट पहुंचता है तो एक रेडियो फ्यूज विस्फोटक को दाग देती है । ये अस्त्र 15,000 मील प्रतिघण्टे की रफ्तार से अपने लक्ष्य की ओर जाते हैं ।

हमारे पास ऐसे भी प्रक्षेपणास्त्र हैं जो एक वृक्ष की ऊंचाई जितनी सतह से भी काम कर सकते हैं और नीची उड़ान द्वारा उन निशानों के विरुद्ध भी चलाए जा सकते हैं जो नीची उड़ान द्वारा रेडारों से बच निकलने का प्रयत्न करते हैं ।

23. अंतरिक्ष युग

राकेट को, युद्ध के एक इंजन के रूप में, सारा इतिहास पहचानता है। और तो और 1812 के युद्ध तक में, एक ब्रिटिश पोत में एक अमरीकी बन्दी ने पद्य में 'राकेट की लाल चमक' की व्याख्या करते हुए लिखा था कि इससे रात्रि जगमगा उठी और हम देख पाए कि 'हमारा झण्डा अभी तक वहीं है।'।

फिर भी महान उपन्यासकार जूले वर्न ने ही सबसे पहले राकेट की एक अन्य सम्भावना की कल्पना की थी। वह यह थी कि इसके द्वारा हम अन्तरिक्ष के वायुविहीन संसार की यात्रा कर सकते हैं। यद्यपि उनके राकेट को एक ऐसी कल्पित भीमकाय तोप से चलाया गया था जो सम्भव ही नहीं थी, फिर भी उन्होंने चन्द्रमा की ओर यात्रा का ऐसा वर्णन किया जो बिल्कुल यथार्थ प्रतीत होता था। उन्होंने इस कथन से पाठकों की कल्पना को जगा दिया था।

1898 में जियोल्कोवस्की नामक एक रूसी ने पहली बार वैज्ञानिक नियम प्रस्तुत किए जिनके द्वारा एक राकेट, सात मील प्रतिसेकण्ड की गति से अन्तरिक्ष में भेजा जा सकता था।

इसी कल्पना से एक अमरीकी प्रोफेसर रॉबर्ट एच० गोडाड को प्रेरणा मिली और वही पहला व्यक्ति था जिसने 7500 फुट की ऊंचाई पर राकेट फेंका।

हरमन ओबर्थ नामक एक जर्मन ने 1923 में 'राकेट से ग्रहीय अन्तरिक्ष तक' शीर्षक से एक पुस्तिका लिखी जिसमें बताया गया कि किसी राकेट को पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की पहुँच से परे भेजने के लिए क्या कुछ करना आवश्यक है। उसने जर्मनी

के युवकों के एक दल को, जिसमें वर्नहर वान ब्रान भी शामिल था, इतनी प्रेरणा प्रदान की कि वे वास्तव में अलकोहल तथा आक्सीजन इंजनों पर प्रयोग करने लगे। अन्त में हिटलर ने उन्हें प्रोत्साहन दिया और बाल्टिक सागर के पीनेमुण्डे द्वीप पर उन्हें सब सुविधाएं दी गईं, जहां से दस वर्ष बाद वी-२ रॉकेट एक सौ मील की उंचाई पर फेंके गए।

रॉकेट बनाने के काम के ये अग्रदूत अमरीकियों तथा रूसियों द्वारा पकड़े गए। इन्होंने ही अन्तरिक्ष-सम्बन्धी आधिपत्य के लिए दौड़ का सूत्रपात किया। रॉकेट बनानेवाले वैज्ञानिक वास्तव में सेना के प्रक्षेपणास्त्रों में दिलचस्पी नहीं रखते थे। उनकी कल्पना तो चन्द्रमा की ओर उड़ानें भर रही थी।

सबसे पहले रूसी इसमें सफल हुए। उनका तीन चरणों-वाला स्पुत्निक सीधा 4500 मील ऊपर गरजता हुआ गया और पृथ्वी की गति से लाभ उठाता पूर्व की ओर मुड़ गया। इसका पहला भाग अलग हो गया और दूसरा भाग 12,000 मील प्रति-घंटे की गति से घूमता रहा। फिर यह भाग भी गिर गया और अंतिम भाग फटकर 18,000 मील प्रतिघंटे की गति से घूमने लगा। तीसरे चरण में, यह धातु-निर्मित तथा इलेक्ट्रॉनिकी यंत्रों से सुसज्जित 184 पौण्ड का यंत्र पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति को पार कर गया और हर २४ घंटों में पृथ्वी के गिर्द १६ बार चक्कर काटने लगा। इस तरह उसने मनुष्य द्वारा निर्मित प्रथम भू-उपग्रह की संज्ञा पाई। शीघ्र ही बाद में दूसरे भू-उप-ग्रह भी चक्कर काटने लगे। इन्होंने ऐसी सूचनाएं एकत्र कीं जिनकी सहायता से मनुष्य इस महान और नये साहसिक कार्य में जुट गया।

चन्द्रमा तक पहुंचने की दौड़ जारी है। पिछले दस साल से वायुयान धीरे-धीरे अन्तरिक्षयान में परिवर्तित होते आ रहे हैं। खरबों रुपये यांत्रिक मानव पर खर्च किए गए हैं, जो चन्द्रमा तक जाने के लिए हमारा दूत बनने की तैयारी में हैं और जिसे मानव जाति अज्ञात नवीन संसार की खोज के लिए भेजेगी।

चन्द्रमा की ओर यात्रा में बाधाएं

चन्द्रमा की ओर यात्रा में जो बाधाएं आ रही हैं उन्हें धीरे-धीरे काबू में लाया जा रहा है। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की पहली बाधा पर तीन चरणोंवाले रॉकेट तथा रॉकेट-इंजन की आगे बढ़ने की उत्तरोत्तर बढ़ती शक्ति द्वारा काबू पा लिया गया है। वी-2 नामक रॉकेट की आगे बढ़ने की शक्ति 55,000 पौण्ड थी और वह 200 मील ऊंचा उड़ गया था। फिर यह ऊंचाई 200 मील से 700 मील हो गई। फिर आगे बढ़ने की 2,65,000 पौण्ड शक्तिवाला इंजन आया। इसके बाद आया सोवियत ल्युनिक रॉकेट का 5,51,000 पौण्ड शक्तिवाला इंजन। अब अन्तरिक्ष रॉकेट ने एक सेकण्ड में 5 मील की प्रारम्भिक गति से यह आश्वासन दे दिया है कि वह पृथ्वी की सतह पर नहीं गिरेगा।

वातावरण में पुनः प्रवेश करने में दूसरी बाधा है धक्का देने-वाली वह लहर जो धातु के बने ढांचे का ताप 15,000 डिग्री फारेन-हाइट तक बढ़ा देती है। एक नई धातु पर प्रयोग किया जा रहा है। मनुष्य के लिए यह पुनर्प्रवेश ठीक वैसे ही है जैसे एक चलती हुई मोटरकार 600 मील प्रतिघंटा की गति से ईंटों की एक दीवार से जा टकराए। रॉकेट को धीरे-धीरे वातावरण में प्रवेश करना है और गति को कम करने के लिए आगे फट जानेवाले रॉकेटों का उपयोग करना है।

फिर-आक्सीजन विहीन संसार में जीने की बाधा है। केवल 30,000 फुट की ऊंचाई पर मनुष्य 2 मिनट में मर जाता है। हमारे पास वायु-चापित कक्ष है और अन्तरिक्ष पोशाक जिसकी सहायता से प्रत्येक मनुष्य 35 टन (3.4 पौण्ड प्रतिवर्ग इंच) भीतरी दबाव को सहन कर सकता है। मोटर-लारी के टायर के समान अन्तरिक्ष पोशाक में एक पतला अस्तर-सा लगा होता है और बाहर कठोर नियंत्रक नाइलोन का खोल। इसमें लचीले जोड़ लगे होते हैं, अपवारित दोहरी दीवार की खिड़कियां और शरीर के ताप को दूर करने के लिए इसका अपना वायु-अनुकूलन यंत्र लगा होता है। मनुष्य अपना वातावरण अपने साथ ले जाता है।

जब विभिन्न उपग्रहों को अन्तरिक्ष में भेजा गया तो वे एक चौथी घातक बाधा की सूचना लाए। वह बाधा है—प्रोटॉन अथवा इलेक्ट्रॉन रेडियेशन की बाधा, जो 60,000 या इससे भी अधिक मील तक फैली है और हर 60 मील के बाद दुगुनी तीव्र हो जाती है। यह बाधा सबसे अधिक बुरी दिखती है। पर वास्तव में, दूसरी बाधाएं भी तो उस समय तक बुरी दिखती रहें जब तक कि उन्हें दूर नहीं किया गया।

अन्तरिक्षयात्रा की योजना

अन्तरिक्ष पर वैज्ञानिक-चढ़ाई बड़े पैमाने पर जोर-शोर से शुरू है। ईंधनों तथा रॉकेटों का उत्पादन बड़े पैमाने पर हो रहा है। अन्तरिक्ष पर अन्तिम विजय पाने की योजनाएं बनाई जा रही हैं। लक्ष्य है—10,000 पौण्ड पेलोड 300 मील ऊंचाई पर; 2500 पौण्ड पेलोड 22,000 मील ऊंचाई पर; चन्द्रमा पर 3000 पौण्ड का प्रभाव; शुक्र, मंगल तथा बृहस्पति नक्षत्रों की ओर 1,000 पौण्ड शलाका-परीक्षण, और रीट्रो-राकेट लगी नली में स्वयं मनुष्य, जो नीचे तैरते हुए पृथ्वी के वातावरण में वापस लौट आएंगे। ये सारी तैयारियां उस मनुष्य द्वारा चालित उपग्रह-स्टेशन के निर्माण की केवल प्रारम्भिक तैयारियां हैं जो शीघ्र ही चार मील प्रतिसेकण्ड की गति से सतह समुन्दर से 4,000 मील की ऊंचाई पर पृथ्वी के गिर्द चक्कर काटने लगेगा।

इस अन्तरिक्ष-स्टेशन के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है कि वह प्लास्टिक का बना एक विशाल फेरिस पहिया होगा जिसकी चौड़ाई 250 फुट होगी, और अपने चालकों के वास्ते वैसी ही आकर्षण शक्ति का बोध उत्पन्न करने के लिए, जैसी पृथ्वी पर होती है, अपनी धुरी के गिर्द धीरे-धीरे घूमेगा। उन लोगों के लिए भारहीनता के बोध का लोप हो जाएगा जो कम से कम यह जानते हुए कि कौन-सा किनारा ऊपर है, मक्खी के समान चक्कर की बाहरी दीवार पर चलने लगेगे। बहते पानी में एक दिन में हजार गुना बढ़नेवाली एक नई प्रकार की समुद्री घास, मनुष्य

द्वारा चालित उपग्रह के सवारी-डिब्बों को आक्सीजन देती रहेगी।

आगे की धकेलने की शक्ति के बाद इलेक्ट्रॉनिक निर्देशन-व्यवस्था, अन्तरिक्ष की यात्रा के कार्यक्रम का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग है। अब इस व्यवस्था का केवल 6×10 इंच होना आवश्यक है, अर्थात् इसे उस साइज का केवल चालीसवां भाग होना चाहिए जिसकी आवश्यकता आज से 5-6 साल पहले थी।

राकेट की नोक की त्वचा पर धातु का एक टुकड़ा एक सूक्ष्माकार रेडियो को अपने ताप की सूचना देता है। छोटा-सा गाइगर गणक रेडियेशन नापता है। ऑडियो आसिलेटर, वापस पृथ्वी को, जहां फ्रिक्वेंसियों को अलग किया जाता है और उत्तरों को टाइप किया जाता है, शोर मचाकर गणकों को सूचना देते हैं।

तीन भू-उपग्रह, 22,000 मील की ऊंचाई पर, पृथ्वी से स्थिर नक्षत्रों जैसे दिखाई देंगे। वे सारी पृथ्वी के लिए बादलों से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करेंगे। वे उन शक्तियों की माप करेंगे जो ध्रुवों तथा भूमध्य-रेखा के क्षेत्र के अन्दर तथा बाहर आती-जाती हैं। मौसम का निर्माण सूर्य से प्राप्त ताप और वापस अन्तरिक्ष में भेजे गए ताप के संतुलन पर निर्भर करता है। फोटो-इलेक्ट्रिक सेलों की चमक को मापने से हम यह जान सकेंगे कि किसी विशेष क्षण में सूर्य का कितना ताप पृथ्वी पर पहुंचता है। पृथ्वी से होनेवाले अवरक्त (इंफ्रा-रेड) से रेडियेशन को मापने से हम अपने वातावरण की स्थिति के बारे में बताने योग्य हो सकेंगे। हम अन्तरिक्ष में गिर रही वायुमण्डलीय धूल की मात्रा का हिसाब लगाकर वर्षा पर इसका प्रभाव जान जाएंगे। रेडियो-संकेत, हमारे ऊपरी वातावरण की विद्युत्-परत तथा पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्रों के व्यवहार का एक्स-रे चित्र देगा। इतनी ढेर सारी सूचनाओं की सहायता से इलेक्ट्रॉनिक गणक, संसार-भर के मौसम के रुख के बारे में, बड़े लम्बे समय तक की भविष्यवाणी करने योग्य हो जाएंगे। आज हमारी सूचना, उस सूचना का केवल 10 प्रतिशत है, जो वास्तव में आवश्यक है।

इन उपग्रहों में लगा ५ वाट का ट्रांसमीटर सारी पृथ्वी

के गिर्द टेलीविजन प्रसारित कर सकेगा और इस बात की गारंटी देगा कि प्रसारण अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य वास्तविक रूप में एक-दूसरे के पड़ोसी हो जाएंगे। उपग्रहों में लगे इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क पृथ्वी पर कहीं भी विमानों तथा समुद्री जहाजों की स्थिति के बारे में तुरन्त सूचना देंगे, जिससे ऐसी स्थिति जानने की मौजूदा विधि पुरानी पड़ जाएगी। प्रत्येक मनुष्य कुछ और वजन के अपने निजी रेडियो द्वारा पृथ्वी पर किसी भी दूसरे मनुष्य से वार्तालाप कर सकेगा। ऐसे ही अमत्कार का ज्ञान हमें अगले चन्द वर्षों में, २२,००० मील ऊँचे तीन उपग्रहों द्वारा प्राप्त होगा।

शायद, इससे भी ज्यादा दिलचस्प होगी उपग्रह पर लगी परमाणु-घड़ी की परीक्षा। यदि वह उसी समय पृथ्वी पर अपनी जाति की घड़ी की अपेक्षा प्रतिवर्ष एक सेकण्ड का चन्द हजारवां अंश भी खो देती है तो आइंस्टाइन का अन्तरिक्षकाल का सिद्धान्त ठीक सिद्ध हो जाएगा। इसका अर्थ होगा अन्तरिक्ष की यात्रा का कम हो जाना। तब उस यात्री के जीवनकाल के केवल कुछ वर्ष, पृथ्वी-वासी के जीवनकाल की सदियों के बराबर होंगे।

चन्द्रमा तथा नक्षत्र

हम पहले से ही चन्द्रमा पर आवास की योजना बना रहे हैं। नालीदार धातु के सिलिण्डर, जो भीतर से एक वायुमण्डलीय आवरण द्वारा वायु-चापित तथा ढंके होंगे, भारी वजन से चन्द्रमा की धूल पर टिकाए जाएंगे। हम अभी से प्लास्टिक के गुम्बदवाले एक शहर को बसाने और खानें खोदने के काम की कल्पना कर रहे हैं, जिससे सारा खर्चा निकल आएगा।

चन्द्रमा हमसे एक प्रकाश-सेकण्ड दूर है और सूर्य आठ प्रकाश-मिनट। परन्तु, सबसे निकट का नक्षत्र हमसे कई प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। चन्द्रमा की ओर यात्रा का कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि हम जानते हैं कि सबसे निकट का हमारा दूसरा पड़ोसी सितारा प्रथम-किन्नर (अल्फा-सेंटोरी) चन्द्रदूत की गति के

हि़साब से 1,30,000 वर्ष दूर है ।

फिर भी यांत्रिक मानव, निस्संदेह इस भयानक दूरी को भी लांघने को तैयार है । वैज्ञानिक, आयन राकेट के सिद्धान्त का अध्ययन कर रहे हैं । गतिवर्धक विद्युत् आवेशित परमाणु (आयन) प्रकाश की गति के करीब गति प्राप्त कर सकते हैं ।

यांत्रिक मानव को अपनी शक्ति का ज्ञान होने लगा है ।

आविष्कार की गति का ज्वार खूब तेज़ी से चढ़ रहा है । यह गति जेट विमान के समान है जिसकी गति आकाश से गिरने से पहले धीमी नहीं होती । यांत्रिक मानव के लिए आनेवाले वर्ष अवश्य ही और अधिक चौंधियाने वाले होंगे । सम्भव है, वह पृथ्वी के भीतर सोए पड़े उस ताप को भी बाहर खींच लाए जो ध्रुव-क्षेत्रीय बर्फ की टोपियों को पिघला सके । हो सकता है वह महासागर की तह में से धातुओं को बाहर निकालने लगे । कोई असम्भव नहीं कि वह भूमध्यसागर पर बांध बना दे, सहारा में से नदियां बहा दे, मध्य अफ्रीका के रेगिस्तानों तथा मलेरियाग्रस्त जंगलों में भीलें ही भीलें बना दे । यदि आवश्यकता पड़ी तो वह पृथ्वी की चट्टानों को पीसकर चूरण बना देगा और १० खरब की आबादी के लिए अन्न, धातु तथा कपड़ा पैदा करने के वास्ते महासागर के सारे साधन खींच लाएगा ।

इस यांत्रिक मानव का भविष्य इस धरती पर असीम सम्भावनाओं से भरा पड़ा है, और समय आने पर उसके भीमकाय अन्तरिक्ष-यान दूसरे संसारों में चलते दिखाई देंगे ।

○ ○ ○

हिन्द



पॉकेट

बुक्स

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

